कर्नाटक संस्कृति : एक अध्ययन

चैत्रा एस. बी.एड., पीएच.डी.

बिंब प्रकाशन
नं.105/4, (पहला मंज़िल) के–44, तोटदहट्टी रोड,
केंपनंजांब अग्रहार (होटेल तारा के सामने),
के.आर. मोहल्ला, मैसूरु–570 024

Written by
Chaitra S. Ph.D., B.Ed.
Assistant Professor & Head,
Hindi Department
J.S.S. Women's College, Mysore.

Published by
Bimba Prakashana
No. 105/4, K-44, (First Floor) Thotada Hatti Road
Kempananjamba Agrahara (Opp. Hotel Tara)
K.R. Mohalla, Mysuru-570 024
Mobile : 9739296847

© : Author

First Edition : 2021

Total No. of Pages : 152

70 GSM Maplitho paper is used for printing

Size of the Book : ¼ Demy

Price : Rs. 125-00

ISBN : 978-81-955799-1-4

DTP : Vishalini M.G.

Printed at
Keerthan Graphics
K.R. Mohalla, Mysuru
Mobile : 9916226213
Email: keerthangraphics@gmail.com

पुरोवाक्

'संस्कृति' शब्द का अर्थ ही संस्करण सफाई, शोधन परिष्करण है। मानव जीवन की समस्त गतिविधियों का संचालन उन समष्टिगत अंतर्वृत्तियों का नाम ही संस्कृति है। इस संस्कृति को अपनाने से मानव, सच्चे अर्थ में मानवता की ओर अग्रसर होता है। 'संस्कृति' एक ऐसी क्रिया है उसके संबंध से हर एक व्यक्ति में निर्मलता का संचार होती है। आजकल 'संस्कृति' शब्द अंग्रेजी के कल्चर शब्द का पर्यायवाची माना जाता है।

संस्कृति तथा सभ्यता दोनों अत्यंत प्राचीन शब्द है। विज्ञानियों ने इन दोनों की पर्यायवाची माना है। उनके अनुसार संस्कृति है सामाजिक परंपरा से प्राप्त होता अंग्रेजी 'कस्टम' शब्द 'संस्कृति' का पर्याय माना गया है। 'संस्कृति' अध्यात्मिकता की ओर इंगित करती है तो 'सभ्यता' सामाजिक गतिविधियों की ओर। 'संस्कृति' किसी देश या प्रदेश के आंतरिक विकास के पहलुओं को दर्शाती है तो 'सभ्यता' उसके बाह्य विकास को प्रतिबिंबित करती है। जब हम किसी व्यक्ति को सुसंस्कृत कहते है तो हमारा ध्यान उसके आंतरिक व्यक्तित्व की ओर खींचता है; लेकिन 'सभ्यता' व्यक्ति की व्यवहारिकता में ही देखी जाती है। 'सभ्यता' का तात्पर्य उन साधन सामग्रियों से है जिनके द्वारा मानव जीवन का पथ सुगम एवं प्रशस्त होता है। संस्कृति का अर्थ चिन्तन तथा कलात्मक सर्जन की क्रियाओं से है जो मानव व्यक्तित्व और समाज की समृद्ध तथा पुष्टि बनाती है। इस दृष्टि से विभिन्न धाराओं, साहित्य, ललित-कथाओं, नैतिक आदर्शों और व्यापारों को संस्कृति की संज्ञा दी जाती है। जब भी किसी प्रदेश या देश की संस्कृति की चर्चा करते समय उस प्रदेश के साहित्य – सामाजिक परिस्थिति आचार-विचार, त्योहार-पर्व, धर्म तथा सांप्रदायिकता, ललितकलाएँ आदि के विधि-विधान तथा समग्र-समाज की संसकृति इन्हीं रूपों में अभिव्यक्त होती है।

एक पाश्चात्य मानवता वादी ने कहा-'भारत जीवित कलाओं का संपन्न भंडार है।' यह युक्ति कर्नाटक के लिए भी लागू अक्षरशः होती है। कर्नाटक कलाओं का निधि निवास भी है।

मानवीय संबंधों की भाषा कला ही है; मानव की आत्माभिव्यक्ति कला के माध्यम से पूर्ण तथा संपन्न होता है। इसे समझने की शक्ति समस्त मानव जाती को ईश्वर प्रदत्त होती है। एक ओर जहाँ कला मनोभावों का कोमल स्पर्श करती है तो दूसरी ओर श्रेष्ठतम विचारों का बौद्धिक उत्कर्ष भी कला के विभिन्न रूपों में प्रतिबिंबित होता है। कला के संगीतात्मक कथा काव्यात्मक पक्ष वाचिक रूप में तथा अन्य सभी पक्ष अवचिक रूप में भाषा के इस उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। कुल मिलाकर 64 प्रकारों में कलाओं को विभाजित किया जाता है। संगीत, नृत्य, वाद्य आदि अन्य कलाओं से श्रेष्ठ माना गया है।

कला उसे कहा जाता है कि जब मानव आत्मा आनन्द से उद्वेलित होकर जो अभिव्यक्ति करती है वही इसे माना जाता है कि कला मानव हृदय की सौंदर्यानुभूति रूप-रंग, आकार ध्वनि आदि के माध्यम से वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्र-कला, नृत्य एवं संगीतादि कलाओं के रूप में प्रकट होती है। कला मानव के भावों, विचारों एवं कल्पना की द्योतक होने के कारण संस्कृति की परिचायिका है। यही कारण है कि प्रत्येक देश की कला वहाँ की संस्कृति से अनुप्राणित और स्थानीय विशिष्टताओं से अनुरंजित होती है। कर्नाटक में मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत एवं नृत्यकालों के कारणों आदर्श राजाओं के महत्वपूर्ण कर्तव्यों में कला कौशल को समुन्नत करना एवं कलाकारों को संरक्षण किया जाता है। प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, फलस्वरूप कर्नाटक की कला संस्कृति अत्यंत श्रेष्ठतम है।

कर्नाटक के इतिहास में हम्पी नगर का महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि सोलहवीं शतब्दी के प्रारंभ में हम्पी को ही केन्द्र बनाकर विश्वविख्यात विजयनगर साम्राज्य कि स्थापना हुई जिसका बोलबाला सारे दक्षिण-

भारत में व्याप्त हुआ और जिसके राजाओं ने संगीत, नृत्य, साहित्य, शिल्पादि कलाओं को प्रोत्साहन देकर स्थान-स्थान पर भव्य मन्दिरों और महलों के निर्माण तथा पुनरुद्धारण के द्वारा कर्नाटक के कलापूर्ण वैभव को उद्घोषित किया। विजयनगर के राज्यकाल में कलाप्रिय अनेक विदेशियों का आगमन भी हुआ जिन्होंने विजयनगर काल के मन्दिरों और वास्तुशिल्पों की खूब प्रशंसा की है। विजयनगर साम्राज्य की राजधानी हम्पी के विरुपाक्षेश्वर स्वामी का दिव्य मन्दिर अपने ऐतिहासिक महत्व के कारण हर साल लाखों पर्यटकों को आकर्षित करता है।

महाबलेश्वर का पुरातन भव्य मन्दिर जो समुद्रतट के अति निकट ही निर्मीत हुआ है और पुराणों में इस मन्दिर से संबन्धित कई कथाएँ उपलब्ध होती हैं। इतिहासकारों का कथन है कि यह बनवासी कदंब वंश के राजाओं ने निर्मित किया होगा। पुराणों में उल्लिखित क्षेत्र-महात्म्य तो हमें त्रेता युग को ले जाता है और यह भी बताता है कि यह मन्दिर रामायण, महाभारत के काल से ही लोकप्रिय रावण द्वारा निर्मित पंच शिवक्षेत्रों में यह गोकर्ण प्रमुख है जहाँ महाबलेश्वर आराध्य देवता बनकर भक्तजनों पर कृपावृष्टि कर रहे हैं। रावण द्वारा निर्मित अन्य चार शिवक्षेत्रों के देवता हैं सज्जेश्वर मुर्डेश्वर, धारेश्वर और शुभलिंगेश्वर।

पुराणों में वर्णित त्रिस्थली शिवक्षेत्रों के अन्तर्गत उत्तर की काशी और दक्षिण के रामेश्वर के साथ कर्नाटक के समुद्रतटीय क्षेत्र गोकर्ण का नाम उल्लिखित हुआ है। कदंब राजाओं से लेकर विजयनगर साम्राज्य के शासन काल तक अनेक राजा एवं सामंत इस प्रदेश में स्थित मन्दिरों में विशेष रूप से महाबलेश्वर देवालय में नियमित रूप से नित्यपूजा, उत्सव आदि चलाने के लिए विपुल धनराशि का अनुदान देते रहे। उत्तर में शाल्मली नदी तथा दक्षिण में अघनाशिनी नदी प्रवाहित होकर गोकर्ण क्षेत्र को और भी पवित्र बना रही हैं।

भारत में कर्नाटक एक ऐसा राज्य है जो देखनेवालों का मन मोहित करता है। कर्नाटक की नदियाँ मन-मोहक ढंग से नर्तन करती हुई बहती है। यहाँ की पहाडियों का वैभव बेजोड़ है। कर्नाटक संस्कृति तो प्रकृति की गोद में बसे यहाँ आगुंबे के सूयोदय देखने लायक है। कर्नाटक तथा कन्नड़ भूमि का सौंदर्य से हृदय आनंद और उल्लास से भर उठता है। स्थिर ऐश्वर्यपूर्ण प्रकृति सौंदर्य से युक्त है। यहाँ की प्रसिद्ध नदियाँ कृष्णा, कावेरी, तुंगभद्रा, भीमा, मलप्रभा, घटप्रभा आदि। कर्नाटक संस्कृति तो प्रकृति की गोद में बसे तपोवनों में ही विकसित हुई है। प्रसन्न रूप ही सामने आया है। यहाँ सात्विक भावों के प्रति प्रेरित करता है अथवा अपने ममतामयी स्पर्श से थपथपाता दुलराता है।

इस सुन्दर प्रदेश के निवासी व सौंदर्योपासक कलाकार की निष्ठा एवं तपस्या से बनाई हुई मूर्तिकला व शिल्पकलाओं को हम बादामी, ऐहोळे, पट्टदकल्लु, बेलूरु, हळेबीडु, सोमनाथपुर, श्रवणबेळुगोळ आदि स्थानों पर देख सकते हैं। यहाँ के नगर सौंदर्य के संबंध में क्या कहें वह तो सौंदर्य का प्रतिरूप है। यहाँ के राजाओं और महापुरुषों की पावन धरती का वर्णन करना कठिन कार्य है। मैसूर संस्थान के 'राजा वडेयरु' बारे में वर्णन करने के लिए शब्द ही कम पड़ती है। इसलिए कर्नाटक के दर्शनीय स्थानों का प्रत्येक्ष दर्शन करना अपने आप में एक नया अनुभव है।

अनुक्रमणिका

कर्नाटक की प्राचीनता तथा व्युत्पत्ति	8
कर्नाटक के संगीत, शिल्पकला और वास्तुशिल्प का संक्षिप्त परिचय	32
कर्नाटक के धार्मिक और दर्शनीय स्थान	55
कर्नाटक के प्रमुख धार्मिक स्थान	102
कर्नाटक के प्रमुख दर्शनीय स्थानों की समीक्षा	137

कर्नाटक की प्राचीनता तथा व्युत्पत्ति

'संस्कृति' शब्द का अर्थ ही संस्करण सफाई, शोधन परिष्करण है। मानव जीवन की समस्त गतिविधियों का संचालन उन समष्टिगत अंतर्वृत्तियों का नाम ही संस्कृति है। इस संस्कृति को अपनाने से मानव, सच्चे अर्थ में मानवता की ओर अग्रसर होता है। 'संस्कृति' एक ऐसी क्रिया है उसके संबंध से हर एक व्यक्ति में निर्मलता का संचार होती है। आजकल 'संस्कृति' शब्द अंग्रेजी के कल्चर शब्द का पर्यायवाची माना जाता है।

संस्कृति तथा सभ्यता दोनों अत्यंत प्राचीन शब्द है। विज्ञानियों ने इन दोनों की पर्यायवाची माना है। उनके अनुसार संस्कृति है सामाजिक परंपरा से प्राप्त होता अंग्रेजी 'कस्टम' शब्द 'संस्कृति' का पर्याय माना गया है। 'संस्कृति' अध्यात्मिकता की ओर इंगित करती है तो 'सभ्यता' सामाजिक गतिविधियों की ओर। 'संस्कृति' किसी देश या प्रदेश के आंतरिक विकास के पहलुओं को दर्शाती है तो 'सभ्यता' उसके बाह्य विकास को प्रतिबिंबित करती है। जब हम किसी व्यक्ति को सुसंस्कृत कहते है तो हमारा ध्यान उसके आंतरिक व्यक्तित्व की ओर खींचता है; लेकिन 'सभ्यता' व्यक्ति की व्यवहारिकता में ही देखी जाती है। 'सभ्यता' का तात्पर्य उन साधन सामग्रियों से है जिनके द्वारा मानव जीवन का पथ सुगम एवं प्रशस्त होता है। संस्कृति का अर्थ चिन्तन तथा कलात्मक सर्जन की क्रियाओं से है जो मानव व्यक्तित्व और समाज की समृद्ध तथा पुष्टि बनाती है। इस दृष्टि से विभिन्न धाराओं, साहित्य, ललित-कथाओं, नैतिक आदर्शों और व्यापारों को संस्कृति की संज्ञा दी जाती है। जब भी किसी प्रदेश या देश की संस्कृति की चर्चा करते समय उस प्रदेश के साहित्य – सामाजिक परिस्थिति आचार-विचार, त्योहार-पर्व, धर्म तथा

सांप्रदायिकता, ललितकलाएँ आदि के विधि-विधान तथा समग्र-समाज की संसकृति इन्हीं रूपों में अभिव्यक्त होती है।

कर्नाटक का परिचय

भारतीय संस्कृति के उपवन में कर्नाटक संस्कृति सुरभित कुसुम के समान विकसित होती आयी है। कर्नाटक का अपना एक विशिष्ट स्थान राजनैतिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से है। साहित्य-सृष्टि के रसमार्ग में, धार्मिक दर्शन की दिव्य दृष्टि में, साम्राज्यों के निर्माण तथा उनकी व्यवस्था में, शिल्प-संगीत-नृत्य आदि की कलोपासना में इसी प्रकार जीवन के हर एक क्षेत्र में कर्नाटक की साधना सार्थकता की चरम सीमा को प्राप्त कर चुकी है। इसी तरह कर्नाटक प्राचीन काल से भारतीय-संस्कृति को अपना अमूल्य योगदान समर्पित करता आया है और उसने अपनी एक उज्ज्वल परंपरा स्थापित की है।

कर्नाटक के प्राचीन इतिहास के निश्चित रूप को निरूपित करना सरल नहीं है। चन्द्रवळ्ळी, मास्ती आदि जगहों पर की गयी खुदाइयों से अनेक अंश प्रकाश में आ गये हैं। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि कर्नाटक ने इतिहास के पूर्व-प्राचीन युग से लेकर आधुनिक युग तक के सभी सोपानों को पार कर लिया है। लेकिन कर्नाटक प्रदेश के अस्तित्व का प्रप्रथम उल्लेख हमें महाभारत में मिलता है। सभा-पर्व और भीष्म-पर्व में इसकी चर्चा की गयी है। इसके अनुसार द्राविड़, केरल के समान कर्नाटक भी दक्षिण भारत का ही एक प्रदेश है।

"अथापरे जनपदाः दक्षिणा भरतर्षभ ।
द्रावडाः केरलाः प्राच्य मूषिक वनवासिकाः ।।
कर्नाटक महिषका विकल्प मूषकस्तथा।
झिल्लिका कुंतलाश्चैव सौहृदा नभ काननाः ।।"

(भीष्मपर्व 9/53-59)

उपर्युक्त पंक्तियों से यह विदित होता है कि प्राचीनकाल में 'कर्नाटक' और 'कुंतल' शब्द संभवतः दक्षिण कर्नाटक और उत्तर-कर्नाटक के लिए प्रयुक्त होते थे। विद्वानों का मत है कि इसमें उल्लिखित महिषिका मैसूर के लिए, वनवासिका वनवासी के लिए तथा कुन्तल उत्तर कर्नाटक के लिए प्रयुक्त हुए हैं। ये तीनो भूभाग कन्नड़ भाषा प्रदेश के अंतर्गत आते हैं। महाभारत के अनुसार नकुल ने कर्नाटक के पाँच राज्यों को जीत लिया था। रामायण में 'कर्नाटक' का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु 'किष्किन्धा' नाम अवश्य मिलता है जो कर्नाटक का ही एक भूभाग है। इससे यह प्रतीत होता है कि रामायण में आनेवाले किष्किन्धा, महिषक, वैजयंत, रट्टिका आदि नाम कर्नाटक प्रदेश के ही सूचक हैं। दण्डकारण्य गोदावरी और कावेरी नदी के बीच का भूभाग माना जाता था। धार्मिक विधि के आरंभ में इसका नाम आज भी लिया जाता है। कर्नाटक का अस्तित्व महाभारत और रामायण काल में था। उस काल के लोगों ने देश तथा जातिवाचक के रूप में इस शब्द का प्रयोग किया है। वालि, सुग्रीव जैसे वीर तथा हनुमान (आंजनेय) जैसे महायोगी यहाँ जन्मे हैं। उस समय 'कर्नाटक' नाम उतना प्रसिद्ध नहीं था लेकिन महाभारत काल से वह सर्वप्रचलित हो गया है।

प्राचीन काल में जहाँ तहाँ कन्नड़ भाषा प्रचलित थी, उन सभी प्रदेशों को 'कर्नाटक' नाम से पुकारा नहीं जाता था। उन्हें महाराष्ट्र, लाट, कुन्तल, पुन्नाट आदि विभिन्न नाम दिये गये थे।

कई इतिहासकारों ने कर्नाटक का संबंध सिंधुघाटी की संस्कृति तथा सभ्यता से जोड़ने का प्रयास किया है। चित्रदुर्ग जिले के चन्द्रवळ्ळि नामक स्थान में प्राप्त प्राचीन अवशेषों के आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि कर्नाटक का संबंध महंजोदडो और हड़प्पा से जरूर रहा होगा...। इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ भी कहा नहीं जा सकता क्योंकि उक्त कथन की पुष्टि के लिए पुष्ट-आधार आज तक उपलब्ध नहीं हैं।

ऐसा ज्ञात होता है कि पाणिनि (700 ई.पू.) दक्षिण के विभिन्न प्रदेशों के बारे में बहुत कम जानते थे। परन्तु महाभाष्य के कर्ता पतंजलि दक्षिण के प्रदेशों और राज्यों की काफ़ी जानकारी रखते थे। पाणिनि ने महिष्मति को 'नगर' कहा है। पतंजलि ने लिखा है कि वहाँ महिष अधिक रहने के कारण उसे 'महिष्मति' नाम से अभिहित किया गया है। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि यह 'महिष्मति' ही आज का मैसूर जिला है।

मौर्यकाल में कर्नाटक पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। कन्नड़ के शिलालेखों से यह प्रकट होता है कि सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य पुन्नाट (पुराने मैसूर का एक भाग) आया था और उसने श्रवणबेळगोळ के पास में स्थित 'कळबप्पु' में तपस्या की थी। ई.पू. 150 में ग्रीस से आये तोलेमी ने 'पोन्नाट' को 'पोन्नार' कहकर पुकारा है। उन्होंने जो वर्णन दिये हैं उनसे यह निश्चित रूप में कहा जा सकता है कि वह कर्नाटक का ही एक भूभाग है।

कर्नाटक के ब्रह्मगिरि, चित्रदुर्ग, सिद्धापुर, मल्पे आदि स्थानों में सम्राट अशोक के शिलालेख प्राप्त हुए हैं। उनमें रठिक, पिटनिका और सतीयपूतों का नामोल्लेख हुआ है। संभवतः 'रठिक' शब्द 'रट्ट' के लिए प्रयुक्त हुआ है। राष्ट्रकूटों के पूर्वज 'रट्ट' कहलाते थे। पिटनिका और सूतियपूतो शायद सातवाहन के पूर्वज थे। उनकी मातृभाषा कन्नड़ थी।

'कविराजमार्ग' में कन्नड़ के प्रप्रथम कृतिकार नृपतुंग ने अपने कर्नाटक के विस्तार की चर्चा करते हुए कहा है कि कावेरी नदी से लेकर गोदावरी नदी तक फैला हुआ भूभाग ही कर्नाटक है। अतः महिषमंडल और बनवासी तो कर्नाटक के भाग हैं ही इसमें कोई विवाद नहीं है। बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ सम्राट अशोक ने बौद्ध भिक्षुओं को महाराष्ट्र और महिष-मंडल भेजा था। 'महावंश' नामक बौद्ध-धर्म-ग्रन्थ में बतलाया गया है कि गोदावरी और कृष्णा नदियों के बीच का प्रदेश महाराष्ट्र है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि उसमें उल्लिखित 'महाराष्ट्र' आज का महाराष्ट्र राज्य

नहीं बल्कि प्राचीन कर्नाटक ही है, जिसे उसके भूभाग की विशालता के कारण 'महाराष्ट्र' कहा जाता था।

मिस्र के आक्सिरैंचस् में प्राप्त एक यूनानी प्रहसन कर्नाटक की प्राचीनता का और एक पुष्ट प्रमाण है। इसका रचना काल ईसा की दूसरी शती माना जाता है। उक्त प्रहसन में कर्नाटक के बन्दरगाह मल्पे से संबंधित एक दृश्य है। इसमें प्रयुक्त 'मीन' (स्नान), 'लल्ले' (गप्पे हाँकना) जैसे कन्नड़ शब्दों की ओर विद्वानों का ध्यान खिंच गया है।

तमिल के अति प्राचीन ग्रन्थ 'शिलप्पादिकारं' (200ई.) में कर्नाटक को 'करुनाडर' कहा गया है। इस ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि चेर राजा शेंगुट्टुवन नीलगिरि में कन्नड़ लोगों का नाट्य-अभिनय देखकर मुग्ध हुआ था।

कन्नड़ बोलनेवाली जाति का अस्तित्व श्री शं. भा. जोशीजी के अनुसार वैदिक काल में भी था। उनके मतानुसार-'कन्नाड' मूल शब्द है औऱ कालक्रम में वही 'कन्नड़' बन गया, और 'कर्नाटक' उसी का संस्कृत रूपान्तर है। उनका कहना है कि कण+ नाडु से कन्नाडु बना है। इस संबंध में फादर हेरास् और 'जोशीजी में मतैक्य है कि यह 'कण्' आर्यों के पूर्व के प्राचीन द्राविड़ों की एक जाति है। नाडु का अर्थ है देश। इस प्रकार इसका अर्थ हुआ—'कण् जातिवालों का देश'। यह जाति अति प्राचीन काल की 'कळवर' अथवा 'कळळर' जाति की एक शाखा है जिसका संबंध ऋग्वेद से जोड़ा जाता है। इस जाति के लोगों का प्रधान उद्योग पशुपालन था और उनके इष्ट देव रुद्र (शिव) थे।

वेद के 'स्तेनानां पतये नमः' मंत्र से यह बात प्रमाणित होती है कि कळवर जाति मूल द्राविड़ जाति है लेकिन 'कळ्' जाति आर्य-द्राविड जाति है। जब कळवर जाति के साथ आर्यों का संपर्क बढ़ा, दोनों जातियाँ मिलजुल गयीं औऱ वह आर्य-द्राविड़ जाति कहलाई। ऋग्वेद में इसका उल्लेख मिलता है। कर्नाटक संस्कृति का प्रादुर्भाव इसी जाति से हुआ है।

कविवर श्री बेन्द्रेजी कर्नाटक-संबंध जोड़ते अवश्य है, लेकिन अलग ढंग से। उनके अनुसार कन्नड़ वंश के मूल में दो जातियाँ रही है—'कण्णरु' और 'नाटरु'। वेदकाल के पूर्व में ही इनका अस्तित्व रहा। इन दोनों के मेल से ही कर्नाटक अथवा कन्नड़ वंश का निर्माण हुआ। बेन्द्रेजी के इस मत की पुष्टि में और भी पुष्ट आधारों की आवश्यकता है।

उपर्युक्त सभी मत केवल विभिन्न अभिप्राय बनकर रह गये हैं। इनमें कोई भी मत शास्त्रीय ढंग से या वैज्ञानिक आधार पर निरूपित नहीं हुआ है। फिर भी यह अनुमान किया जा सकता है कि इतिहास के पूर्वकाल से ही कर्नाटक में कालक्रमानुसार नागरिकता का विकास हुआ है।

पुष्ट आधारों के अभाव के कारण यह निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता कि 'कर्नाटक' नाम के जनपद ने कब से अपने स्वतंत्र अस्तित्व की स्थापना की। लेकिन यह कहने में कोई आपत्ति नहीं कि कन्नड़ जनपद एक अत्यन्त प्राचीन जनपद है।

कर्नाटक शब्द की उत्पत्ति और उसकी महत्ता

व्यक्ति का हो या प्रदेश का, लेकिन नाम का बड़ा महत्व है। अगर किसी प्रदेश का नाम लेंगे तो उस प्रदेश की किसी विशेषता का परिचायक होता है। उस नाम से ही वहाँ की संस्कृति का थोड़ा-सा परिचय भी मिल जाता है। नाम कभी जाति का परिचायक होता है तो कभी उस भूभाग की विशेषता का। 'कर्नाटक' शब्द में कई अर्थों की व्यंजना है। इस शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई और इसका प्राचीन रूप क्या है—इस संबंध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। फिर भी भिन्न-भिन्न मतों के अध्ययन से इस नाम का महत्व अवश्य विदित होता है।

सामान्यतः विद्वानों का यही मत है कि 'कर्नाडु' अथवा 'कन्नडु' ही इस प्रदेश, जाति और भाषा के लिए प्रयुक्त किया गया पहला नाम है। इसका संस्कृत रूपान्तर 'कर्णाट' या 'कर्णाटक' कहा जा सकता है। लेकिन

'कर्नाडु' से भी पहले मिलनेवाला प्राचीन रूप है 'कर्नाटक' इसके लिए पर्याप्त कारण भी दे सकते हैं। संस्कृत साहित्य कन्नड़ साहित्य से बहुत प्राचीन है। कन्नड़ के नाम कन्नड़ साहित्य में प्रयुक्त होने के पहले संस्कृत साहित्य और शिलालेखों में संस्कृत में रूपान्तरित होकर आते थे। अब तक प्राप्त प्राचीन कन्नड़ रचनाओं में 'कविराज मार्ग' प्रप्रथम ग्रन्थ माना जाता है। इसके रचनाकार नृपतुंग ने इसमें 'कर्नाटक'—शब्द का प्रयोग न कर 'कन्नड़' शब्द का प्रयोग किया है। कन्नड़-जनपद ने पहली बार किसी एक नाम विशेष से अपने आपको पुकारा—इसके लिए यह आधार है। यह तो प्रमाण सिद्ध बात है कि आर्यों के आगमन और संस्कृत भाषा के प्रचार के पूर्व ही कन्नड़-जनपद अस्तित्व में था।

यहाँ के प्राचीन कवियों ने 'कन्नड़' शब्द का प्रयोग, प्रदेश और जातिवाचक अर्थ में किया है। नृपतुंग ने (815 ई.) अपने 'कविराज मार्ग' में स्पष्ट रूप से इस प्रदेश का नाम कन्नड़ कहा है।

"कावेरियिंदमा
गोदावरिवरमिर्द नाडदा कन्नड़दोळ्
भाविसिद जनपदं वसु-
धा वलय विलीन विषय विशेषम्।"

(कावेरी से गोदावरी तक फैला हुआ भूभाग ही कन्नड़ है, वसुधा की समस्त विशेषताओं से युक्त यह जनपद विकसित है।)

इनके अतिरिक्त आण्डय्य आदि अनेक कवियों ने भी देशवाचक के रूप में 'कन्नड़' का प्रयोग किया है। तमिल बृहत् कोश में भी हम 'कन्नड़' शब्द को देशवाचक अर्थ में प्रयुक्त पाते हैं। अतः यह सुस्पष्ट है कि 'कन्नड़' शब्द अत्यन्त प्राचीन रूप है—इसका प्रयोग देश और जातिवाचक के रूप में होता था। तदनंतर इसका प्रयोग सिर्फ भाषा के लिए होने लगा।

अब हम 'कन्नड़' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में कतिपय विद्वानों के मतों पर विचार करें—

जैन पण्डित केशवर्णि (1359 ई.) का कहना है कि 'कर्नाटक' शब्द भेदनार्थक 'कर्ण' धातु से उत्पन्न हुआ है। यह भाषा देवभाषा संस्कृत से भिन्न व्यवहृत होने के कारण भेदनार्थ में 'कर्ण' ही 'कर्नाटक' बन गया है। विश्वगुणादर्श के कर्ता वेंकटाध्वरि (करीब 1700 ई.) का विवरण चमत्कारपूर्ण है। 'कर्ण' में 'अटन' करनेवाला याने हर एक के कर्ण या कान पर पड़कर प्रसिद्ध हुआ यह प्रदेश 'कर्नाटक' बन गया है। (कर्णयोः अठति इति कर्नाटकः)। ये विवरण उतने तर्क संगत नहीं जान पड़ते ; क्योंकि आर्यों के संपर्क में आन के पहिले ही कन्नड़ जनता तथा राज्य अस्तित्व में थे और उनका अपना नाम भी था। इसलिए इस शब्द का मूल संस्कृत में नहीं है। वह देशज शब्द है। अतः ऐसा कहा जा सकता है कि आर्यों ने उसी का संस्कृतीकरण करके उसे कर्नाटक बनाया।

'कन्नड़' के रूप विचार में अथवा इसके देशी रूप—'कर्नाडु' के संबंध में भी मतैक्य नहीं है। ऐसा विवरण दिया जाता है कि 'करु' (कर्र) + 'नाडु'—इन दो शब्दों से कन्नड़ शब्द बन गया है। यहाँ कर्र अथवा करु का क्या अर्थ है—इस संबंध में बहुत वाद-विवाद है। कुछ लोगों के अनुसार 'करु' का अर्थ है काला और 'नाडु' का अर्थ प्रदेश। अतः काली मिट्टीवाली प्रदेश 'कन्नड़' है। इस मत को सही मानने में आपत्ति यह है कि यहाँ की भूमि सिर्फ काली नहीं है, लाल भी है। और जितना महत्व काली मिट्टी का है उतना ही लाल मिट्टी का भी है। 'कर्र' से दूसरा अर्थ यह भी निकाला जाता है कि—'ऊँचा और विशाल।' चूँकि यह प्रदेश समुद्र की पन्द्रह सौ फुट ऊँचाई पर है अतः करुनाड कहा जाता है। कर्नाटक उस समय एक बहुत बड़े भूभाग को आवृत्त किया हुआ अत्यन्त विशाल राज्य था। इसीलिए इसको 'महाराष्ट्र' की संज्ञा दी गयी थी। इसी अर्थ में इसको 'करुनाडु' कहा जाता था।

एक विद्वान के अनुसार 'कन्नड़' का रूपान्तर इस प्रकार है—कन्नाडु-कन्नडु-कन्नड़। उन्होंने इस शब्द का विग्रह इस ढंग से किया है—

कम्मित्तु+ नाडु= कन्नाडु। इसका अर्थ है—सुगंध (परिमल या खुशबू) से भरा देश। चन्दन के वनों तथा पद्माकरों से भरे भरपूर रहने के कारण यह नाम इसको दिया गया है। इस मत के समर्थन में यह कहा जा सकता है, जिस तरह तमिल और तेलुगु के लोग अपनी भाषाओं के शब्दों की व्युत्पत्ति माधुर्यवाची शब्दों से मानते हैं, उसी तरह कर्नाटक की जनता भी अपनी भाषा व प्रदेश का नाम सुगुणवाची शब्दों से उत्पन्न माने तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इस मत को स्वीकारने में आपत्तियाँ ये हैं—पूरे कन्नड़ प्रदेश को सुगंधयुक्त कहा नहीं जा सकता, हाँ, पुराने मैसूर के लिए यह संज्ञा दी जा सकती है। इसके अलावा यह जरूरी नहीं कि कन्नड़वाले भी तमिल और तेलुगुवालों की तरह शब्दों की व्युत्पत्ति का संबंध माधुर्यवादी तत्व से जोड़े और आखिरी बात यह है कि उक्त मत शास्त्रीय-तर्क पर आधारित नहीं है।

‘कन्नाडु’ को जातिसूचक संज्ञा भी माना जाता है जैसे—कण्णर + नाडु = कन्नाडु। यहाँ ‘कण्ण’ का अर्थ है ‘कळ्’ नामक जाति तथा ‘नाडु’ का अर्थ ‘नाटवर’ जाति। इस प्रकार इन दोनों जातियों का प्रदेश ही ‘कन्नाडु’ है। यह मत भी काफी विवादास्पद है। अतः किसी एक निश्चित रूप से निष्कर्ष पर आना कठिन है। फिर भी तमिल कृतियों में किया गया—‘करुनाडर’ शब्द के प्रयोग को ऊँचा या विशाल इस अर्थ में ग्रहित करना ही अधिक संगत जान पड़ता है।

कन्नड़ के वरकवि बेन्द्रेजी के अनुसार ‘कन्नड़’ यही मूल शब्द है। उन्होंने अपने इस मत की पुष्टि में कन्नड़ के प्राचीन ग्रन्थों में किये गये ‘कन्नड़’ शब्द के प्रयोग को उद्‌धृत किया है। उनके अनुसार ‘कन्नड़’ यह शब्द ‘कन्’ मूलधातु के साथ ‘अळ्’ प्रत्यय जोड़ने से बना है इसका रूपान्तर इस प्रकार है—कन्+अळ्=कन्नढ्>कन्नड्>कन्नड़। ‘कन्’ का अर्थ है—दिखाई पड़े या गोचर हो। पूरे पद का अर्थ है—‘भाव गोचर करनेवाला’। भाषा भाव को व्यक्त करनेवाला दर्पण है। अतः हमारे पूर्वजों

ने उक्त नाम दिया होगा। उपर्युक्त मत पर किया गया बड़ा आक्षेप यह है कि वह विवरण शास्त्रीय ढंग से किया हुआ नहीं है। 'कन्न+अळ्' इस तरह पद विगर्ह सर्वमान्य नहीं है। इस प्रकार 'कन्नड़' शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में काफी वाद-विवाद है। पर हम यह कह सकते हैं कि—'कन्नड़' शब्द ही मूल में रहा हो और बाद में 'कर्नाटक' यह नाम प्रचलित हुआ होगा! 'कर्नाटक' इस शब्द के प्रयोग करने में भी 'न' कार का प्रयोग होना चाहिए या 'ण' कार का—यह भी विचारणीय है। आज ये दोनों रूप सर्वप्रचलित हैं। लेकिन यह स्पष्ट है कि पहले पहल 'करुनाडर' इस शब्द का प्रयोग इस प्रदेश की जनता के लिए और 'करुनाड' इस प्रदेश के लिए प्रयुक्त हुआ था। जब वह 'कन्नड़' में रूपांतर हो गया तब इसका अर्थ अधिक व्यापक हो गया। अब यह शब्द देश, भाषा और जाति इन तीनों का सूचक है।

कर्नाटक का विस्तार और उसकी भौगोलिक स्थिति

कर्नाटक भारत के विशाल एवं समृद्ध राज्यों में भी एक है। इसके विस्तार के बारे में कहते समय इसके आसपास के प्रदेशों का उल्लेख करना अनिवार्य-सा लगता है। इसके चारों ओर चार राज्य हैं जहाँ भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं। महाराष्ट्र, केरल, तमिलनाडु और आन्ध्र। इन राज्यों से सटकर कर्नाटक राज्य बसा हुआ है। उत्तर में बेंगलूर, दक्षिण में नीलगिरि, पूर्व में बळ्ळारि, पश्चिम में कारवार और बेळगाँव तक कन्नड़-भाषा व्यवहृत होती है। सीमाप्रदेश की जनता कन्नड़ के अतिरिक्त साथवाले प्रदेश की भाषा भी जानती है। उदाहरण के लिए बळ्ळारि के लोग कन्नड़ के अतिरिक्त तेलुगु और बेळगाँव के लोग मराठी जानते हैं। वर्तमान कर्नाटक या मैसूर राज्य में अन्य भाषा-भाषी अर्थात् तमिल, तेलुगु, मलयालम्, गुजराती आदि भाषाएँ बोलनेवाले लोग अधिक संख्या में पाये जाते हैं।

अब हम यह देखें कि प्राचीन काल में कर्नाटक का विस्तार कहाँ से कहां तक था। इसको जानने में प्राचीन काव्य एवं अन्य प्रमाण सहायक सिद्ध होते हैं। पिछले अध्याय में ही यह बताया गया है कि नृपतुंग ने 'कविराज मार्ग' में कर्नाटक के विस्तार की चर्चा की है। उनके अनसार कर्नाटक प्रदेश कावेरी से गोदावरी तक फैला हुआ था। उक्त ग्रन्थ से यह भी ज्ञात होता है कि इन नदियों के बीच निवास करनेवाले लोगों की भाषा कन्नड़ थी और कृषि उनका प्रधान व्यवसाय रही। किसुबोळल्, पुलिंगरे, ओकुंद औऱ कोपण आदि प्रदेशों में शुद्ध कन्नड़ बोली प्रचलित थी। नंजुंड कवि (16-वीं शती) ने भी कर्नाटक का लगभग यही विस्तार बतलाया है। इस बात की पुष्टि में अनेक-अनेक शिलालेख और ताम्रपत्र उपलब्ध हुए हैं। अतः यह निस्संदेह माना जा सकता है कि नृपतुंग के काल में कर्नाटक ने कावेरी से लेकर गोदावरी तक के विशाल भूभाग को आवृत्त कर लिया था। लेकिन आज यह भूभाग बँटकर विभिन्न राज्यों में मिल गया है।

गोदावरी का दक्षिण भाग अब दो भागों में विभाजित हो गया है—एक महाराष्ट्र में विलीन हो गया तो दूसरा आन्ध्र में। इस तरह प्राचीन काल में उक्त राज्यों के कई प्रदेश कर्नाटक के अंतर्गत थे। कोल्हापुर, शोलापुर आदि प्रदेश पहले कर्नाटक में थे। लेकिन आज ये प्रदेश महाराष्ट्र राज्य में हैं। आज भी कोल्हापुर में कन्नड़ शिलालेख प्राप्त हो रहे हैं। प्राचीन इतिहास से यह भी ज्ञात होता है कि कर्नाटक औरंगाबाद तक फैला हुआ था। सातवीं शताब्दी के प्रद्योतनसूरि नामक जैन कवि ने अपनी रचना 'कुवलय माला' में इस बात का उल्लेख किया है कि औरंगाबाद के पश्चिम में स्थित पैठन कन्नड़ भाषा का केन्द्र था। अतएव यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि सातवीं शताब्दी में पैठने के आस-पास के स्थान जो गोदावरी के मुहाने हैं—कन्नड़ भाषा प्रदेश के अन्तर्गत थे।

आन्ध्र प्रदेश का वंगीमंडल कन्नड़ के आदि कवि पंप के काल में कन्नड़ भाषा और साहित्य का प्रमुख केन्द्र रहा। इस बात का भी उल्लेख

मिलता है कि पुलकेशी द्वितीयन पिष्टपुर (आज इसे पिठापुरम कहते हैं) को जीत लिया था और पश्चिम चालुक्य सम्राट षष्ठ विक्रमादित्य का प्रतिनिधि अनंत भूपाल (12-वीं शताब्दी) गोदावरी मंडल का अधिकारी था। आन्ध्र राज्य. के विशाखपट्टणम्, कृष्णा आदि जिले एक जमाने में कर्नाटक में ही थे। उन जगहों में प्राप्त शिलालेख उक्त बात को प्रमाणित करते हैं।

हम जान चुके हैं कि प्राचीन काल में कर्नाटक को अनेक नामों से पुकारा जाता था। उनमें 'महाराष्ट्र' –यह नाम भी एक है। आज के महाराष्ट्र राज्य के कई प्रदेश उस समय कर्नाटक के अन्तर्गत थे। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्राचीन काल में कर्नाटक एक अत्यन्त विशाल प्रदेश था। आज इसके बहुत से भूभाग अन्य राज्यों के अन्तर्गत हैं।

किसी प्रदेश के जन-जीवन और उसकी भौगोलिक स्थिति में निकट संबंध रहता है। अथवा यह कहना अधिक उचित होगा कि जनजीवन को निर्धारित करनेवाला तत्व ही भौगोलिक परिस्थिति है। मनुष्य का खान-पान, रहन-सहन आदि प्राकृतिक वातावरण पर ही निर्भर हैं। कर्नाटक के जन-जीवन को रूपायित करने में यहाँ की भूमि, वन-पर्वत, पहाड़ियों, नदियों, समुद्र एवं बन्दगाहों का महत्वपूर्ण पात्र रहा है।

प्राचीनकाल से हो कर्नाटक के साथ विदेशी व्यापारियो का संबंध स्थापित हो चुका था। गोवा, बसुरू, वारकारू, मंगळूर, मल्पे आदि उस समय के प्रमुख व्यापारिक बन्दरगाह थे। तोलेमी, प्लिनी और इद्रिसी आदि विदेशी लेखकों ने इनका वर्णन किया है। मिस्त्र, यूनान और अरब के व्यापारी कर्नाटक से अधिक संपर्क रखनेवालों में से थे। दक्षिण मिस्त्र के एक स्थान में प्राप्त दूसरी शताब्दी के ग्रीक प्रहसन का उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। उसकी कथा संक्षेप में इस प्रकार है—कर्नाटक का कोई एक राजा जो—'मल्पेनायक' कहा जाता था, यूनान की किसी एक सुंदर कुमारी (संभवतः राजकुमारी) को उड़ा ले आया। उस ग्रीक कुमारी के रिश्तेदार

उसे छुड़ाकर ले गये। यह प्रहसन यूनानी भाषा में लिखा गया है, फिर भी उसमें 'पगडे आट' (चैसर का खेल), 'लल्ले' (गपशप) आदि कन्नड़ शब्द पाये जाते हैं। इस प्रहसन की कथा को यहाँ उद्धृत करने का उद्देश्य यह दिखाना है कि कर्नाटक ने विदेशियों के साथ प्राचीन काल से ही संपर्क स्थापित किया ता।

कर्नाटक के प्राचीन तथा मध्य-कालीन साहित्यिक इतिहास

कन्नड़ भारत की एक प्रमुख भाषा है, इसका क्षेत्र वर्तमान कर्नाटक राज्य है। प्राचीन काल में इस भाषा को बड़ा गौरव प्राप्त था। नवम्बर 1979 से इसको इस राज्य की प्रशासनिक भाषा का गौरव प्राप्त हुआ है। सहिष्णुता का दूसरा नाम कर्नाटक है। धार्मिक, सामाजिक और भाषागत सहिष्णुता के कारण इस प्रदेश ने पहले से ही विशेष आदर प्राप्त किया है। कर्नाटक विभिन्न धर्मों और सामाजिक आचार-विचारों का समन्वयन-स्थान ही नहीं, अपितु अनेक भाषाओं का भी केन्द्र है। यहाँ की प्रमुख भाषा कन्नड़ के साथ संस्कृत, प्राकृत आदि का भी सम्मान हुआ है। राष्ट्रपिता .महात्मा गाँधीजी की प्रेरणा से जब से दक्षिण में हिन्दी प्रचार का कार्यारम्भ हुआ, तब से यहाँ हिन्दी को भी समयोचित स्थान प्राप्त हुआ है। बारहवीं शती तक संस्कृत की व्याप्ति और विशेष महत्व के कारण कन्नड़ कवियों ने संस्कृत का आदर्श ग्रहण किया। उनकी शैली संस्कृतगर्भित रही और संस्कृत-ग्रंथों से उन्होंने पर्याप्त प्रेरणा ग्रहण की; आज भी कविगण ग्रहण कर रहे हैं। यहाँ उपलब्ध कुछ शिलालेखों में संस्कृत का प्रयोग द्रष्टव्य है। जिन प्राचीन शिलालेखों की भाषा कन्नड़ है, उनमें भी संस्कृत-पद प्रयोग बहुलता देखी जाती है। कर्नाटक के कवि-लेखकों ने संस्कृत-साहित्य को समृद्ध भी बनाया है। यहाँ के जैन पण्डितों, बौद्ध धर्मानुयायियों तथा सनातन हिन्दू धर्म के आचार्यों ने देववाणी संस्कृत में कई ग्रंथों का प्रणयन किया है।

प्राकृत भाषा को राजभाषा के रूप मे कर्नाटक ने स्वीकार किया था। प्राकृत के कवियों में गुणाढ्य, हाल, कुंदकुंदाचार्य, कुमुर्वेदु, गुणभद्र, जोइंदु (जोगिंदु), कोऊहल, (कुतुहल), वीरसेन, जिनसेन, शिवार्य, वट्टकेर, नेमिचन्द्र, पुष्पदत्त आदि के नाम उल्लेखनीय हैं इनमें कुछ कवियों ने अपभ्रंश में भी ग्रंथ रचना की है।

भाषा शास्त्रियों ने कन्नड़ को द्राविड-परिवार की भाषा मानी है। फिर भी यह ध्यान देने की बात है कि कन्नड़ पर संस्कृत का विशेष प्रभाव पड़ा है और इसमें लगभग साठ प्रतिशत संस्कृत-शब्द प्रयुक्त होते हैं। साहित्य की प्राचिनता की दृष्टि से द्राविड़-परिवार की भाषाओं में कन्नड़ का दूसरा स्थान है।

कन्नड़-साहित्य का कब प्रारम्भ हुआ यह बताना आसान नहीं है। आज तक प्राप्त प्रमाणों के आधार पर इसकी प्राचीनता पर विचार करना चाहिए। कर्नाटक में ई. पू. तीसरी शती से शिलालेख प्राप्त हुए हैं कुछ शिलालेखों की भाषा संस्कृत और प्राकृत है। कन्नड़ भाषा के शिलालेखों में प्रथम उल्लेख्य है, हल्मिडि-शिलालेख। हल्मिडि नामक स्थान में प्राप्त होने के कारण उसका यह नाम पड़ा। उसमें उल्लिखित एक कन्नड़ पद्य इस बात का प्रमाण है कि दूसरी-तीसरी शती से ही कन्नड़ में स्वस्थ साहित्य-परंपरा का प्रचलन था। हल्मिडि-शिलालेख के बाद बादामि और श्रवणबेळगोळ के शिलालेखों का नामोल्लेख किया जाना चाहिए। बादामि के महत्वपूर्ण शिलालेख में कन्नड़ छन्द 'त्रिपदी' का प्रयोग हुआ है। श्रवणबेळगोळ में लगभग तीस शिलालेख हैं, इनमें कन्नड़ के कई सुन्दर पद्य अंकित हैं। पट्टदकल्लु नामक स्थान में प्राप्त शिलालेख में, जो आठवीं शती का है, अचलन् नामक कवि ने एक नट श्रेष्ठ की प्रशंसा की है। कन्नड़ कवि का नामांकन सर्वप्रथम इसी शिलालेख में द्रष्टव्य है।

'कविराज मार्ग' उपलब्ध कन्नड़ ग्रंथों में सर्वप्रथम है। इसके रचयिता के संबन्ध में विद्वानों में भिन्न मत हैं। यह एक रीति-ग्रंथ है। इसमें

प्राचीन कुछ कवियों तथा गद्य लेखों के नाम हैं। कन्नड़ में काव्य-रचना करने के दो पद्धतियों बेदंडे और चत्ताण का उसमें उल्लेख है। कर्नाटक के लोगों की प्रज्ञा, कला-साहित्य प्रियता आदि के संबंध में कविराजमार्गकार ने लिखा है कि इस प्रदेश के लोग शब्द का अर्थ जानकर बोलने में समर्थ हैं। जो बोला जाता है, उसे समझने और उसकी आलोचना करने में भी ये लोग दक्ष हैं। सचमुच ये लोग पण्डित हैं तथा काव्य-प्रयोग-पारंगत हैं। इसमें यत्र-तत्र प्राचीन काव्यों से पद्य उद्धृत किये गये हैं। इससे इस बात की पुष्टि होती है कि कविराजमार्ग की रचना के पूर्व ही कन्नड़ में कई काव्य-ग्रन्थों का प्रणयन हुआ होगा।

विभिन्न प्रवृत्तियों को दृष्टि में रखकर कन्नड़-साहित्य के संपूर्ण इतिहास को चार कालों में विभक्त किया जा सकता है—(1) स्वर्ण काल 9 वीं शती से 12वीं शती तक (2) स्वतंत्र काल अथवा शिवभक्ति प्राधान्य काल (12वीं शती से 14 वीं शती के अंत तक), (3) विष्णु-भक्ति प्राधान्य काल (15वीं शती से 19वीं शती तक और (4) आधुनिक काल 19वीं शती से आज तक इसको सर्वोदय काल भी कहा जा सकता है। जाति-धर्म, भाषा और प्रतिनिधि कवियों का प्रभाव आदि को दृष्टि में रखकर विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न रीति से कन्नड़-साहित्य के इतिहास का काल विभाजन किया है। परन्तु उपर्युक्त विभाजन अधिक वैज्ञानिक और अर्थपूर्ण प्रतीत होता है। स्वर्ण काल को प्राचीन काल समझना चाहिए. शिव-भक्ति प्राधान्य काल और विष्णु-भक्ति प्राधान्य काल मध्यकाल के अंतर्गत आते हैं।

कन्नड़-साहित्य के इतिहास का प्राचीन काल अर्थात् स्वर्णकाल महाकवि पंप की कृतियों से प्रारंभ होता है। यद्यपि पंप के पूर्व निश्चित रूप से कई कवि हुए थे। तथापि उन कवियों की कृतियों की अनुपलब्धि के कारण पंप को आदिकवि होने का गौरव प्राप्त हुआ। उनके दो महाकाव्य आदिपुराण और विक्रमार्जुन विजय अथवा पंप-भारत ने उसकी यशप्रदान किया है। जैन-धर्म के अनुयायी होने के कारण उनकी दृष्टि में आदिपुराण

आगम अथवा धार्मिक ग्रंथ है। पंप-भारत (महाभारत) लौकिक ग्रंथ है। पंप का जन्म दुंदुंभी संवत् (902 ई.) में हुआ। उनके वंश के मूलपुरुष माधवसोमयाजी वत्सगोत्र के थे और वेंगिमंडल के विर्मिपळु अग्रहार के निवासी थे। वे वैदिक धर्मानुयायी विप्र थे। पंप के पिता अभिराम देवराय ने यह विचार कर कि धर्मों में जिनेन्द्र धर्म सर्वोत्कृष्ट है, जैन धर्म स्वीकार किया। पंप ने 941 ई. में अपने दोनों काव्यों की रचना की। आदिपुराण के लिए तीन मास का और 'भारत' के लिए छः मास का समय उन्होंने लिया था। कन्नड़ के परवर्ती जैन कवियों ने एक लौकिक और एक धार्मिक काव्य लिखने का आदर्श पंप महाकवि से ही ग्रहण किया। जैन कवियों की दृष्टि में रामायण, महाभारत आदि लौकिक काव्य हैं। जैन धर्म से संबंधित काव्य धार्मिक काव्य हैं। आदि तीर्थंकर पुरुदेव और उनके पुत्र भरत-बाहुबली के चरित्र का वर्णन आदिपुराण का वर्ण्य-विषय है। उसमें पंप की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा प्रकट हुई है।

पंप-भारत पंप की यशोदीप्ति का प्रमुख आधार है। महर्षि व्यास के पदचिह्नों पर चलते हुए भी पंप ने अपने ही दृष्टिकोण के अनुसार अपने काव्य के कथानक में परिवर्तन किया है। अर्जुन उनके काव्य का नायक हैं; उन्होंने अपने आश्रयदाता राजा अरिकेसरी को अर्जुन के रूप मे देखा है। अर्जुन के चरित्र में उन्होंने अरिकेसरी का चरित्र प्रतिष्ठित किया है, अतः उनके काव्य का नाम 'विक्रमार्जुनविजय' है। अरिकेसरी की समस्त उपाधियाँ अर्जुन पर आरोपित हैं वे पंप के काव्य 'सामन्तचूडामणि' हो गये है। तात्पर्य यह है कि पंप-भारत ऐतिहासिक महत्व का काव्य है।

चौदह 'आवासों' (सर्ग) में व्याप्त पंप-भारत के कथानक में दृष्टिगत होनेवाली कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं—(1) द्रौपदी केवल अर्जुन की पत्नी है पंचवल्लभा नहीं (2) अर्जुन ने संन्यासी-वेश में सुभद्रा का अपहरण नहीं किया, सुभद्रा-अर्जुन में परस्पर प्रेम था। (3) शिशुपाल का वध श्रीकृष्ण के चक्र से नहीं हुआ, अर्घ्य की थाली से हुआ। (4) पंप-भारत

में भीष्म से जल-मंत्रोपदेश ग्रहण कर दुर्योधन के वैशंपायन सरोवर में छिपने का वर्णन है। (5) उसमें सुभद्रा के साथ अर्जुन के राज्याभिषेक का वर्णन है। कथानक में इस प्रकार के परिवर्तन के कारण औचित्य के निर्वाह में कवि को कठिनाई हुई है। फिर भी उनकी अद्‌भुत प्रतिभा और कला-चातुरी की आड़ में दोष छिप गये हैं।

पंप के महान् व्यक्तित्व के दर्शन उनकी रचना में सर्वत्र मिलते हैं। उनकी अपार कल्पना-चातुरी और हित-मित-शब्द प्रयोग उनकी प्रतिभा के प्रमाण हैं। क्या वर्णन, क्या चरित्र-चित्रण सब में पंप की समता पंप से ही है; अन्य कोई कन्नड़-कवि उनकी समता नहीं कर सकता। उन्होंने प्रतिनायक कर्ण का जो उदात्त चरित्र-चित्रण किया है, वह साहित्य लोक की अनुपम वस्तु है। कर्ण की सच्चाई, कर्ण का त्याग, कर्ण की वीरता और कहाँ देखेंगे? कर्ण से महाभारत 'कर्णरसायन' हुआ।

पंप ने चम्पू शैली में ग्रंथ-रचना की, उनके परवर्ती कवियों ने भी इसी शैली में काव्य-रचना की। इस कारण कुछ आलोचकों ने कन्नड़-साहित्य के प्राचीन काल को चंपू काव्य काल भी कहा है। पंप इस काल के प्रतिनिधि कवि है।

कन्नड़-साहित्य में पंप, पोन्न और रन्न 'रत्नत्रय' नाम से प्रसिद्ध हैं। पोन्न और रन्न को 'कवि चक्रवर्ती' उपाधि प्राप्त थी। पोन्न राष्ट्रकूट सम्राट कृष्ण तृतीय का आदर प्राप्त कर चुके थे। उन्होंने आत्मप्रशंसा अधिक की है। उनकी तीन रचनाएँ बतलायी जाती हैं—(1) शांति पुराण, (2) भुवनैक रामाभ्युदय और (3) जिनाक्षर माले। 'गत प्रत्यागत' (संस्कृत में) नामक रचना का भी उल्लेख किया जाता है।

रन्न का नाम भी 'रत्न' है। पंप के बाद रत्न का निश्चय ही उन्नत स्थान है। वे चावुण्डराय और चालुक्य तैलप के आश्रय में रहे। उनकी तीन रचनाएँ हैं—(1) अजित पुराण (2) गदायुद्ध और (3) रन्नकंद निघंटु । उनकी अनुपलब्ध रचनाएँ हैं—चक्रेश्वर चरित और परशुराम चरित।

अजित पुराण के आधार पर रन्न की जन्मतिथि 949 ई. ठहरती है। अजित पुराण की रचना जो जैन धार्मिक ग्रंथ है, दानचिन्तामणि अत्तिमब्बे की प्रेरणा से की गई। 'गदायुद्ध' रन्न का कीर्तिस्तम्भ है। अपने आश्रयदाता सत्याश्रय को नायक बनाकर और भीम के चरित्र में उनका अभेद स्थापित कर रन्न ने गदायुद्ध की रचना की। उसमें द्रौपदी भीम की ही पत्नी है, जो महाभारत की कारणभूत है। रस-निरूपण, चरित्र चित्रण, भाषा-शैली आदि सभी दृष्टियों से रन्न का गदायुद्ध कन्नड़ साहित्य का एक अनुपम अमूल्य रत्न है।

रत्नत्रय के बाद 'छंदोंबुंधि' और 'कर्नाटक कादम्बरी' के कवि नागवर्मा प्रथम का, जो राचमल्लु (974-984 ई.) के भाई रक्कस गंग के मंत्री चावुण्डराय के आश्रय में थे। कर्नाटक कादम्बरी, संस्कृत-कादम्बरी ग्रंथ का चम्पूशैली में कन्नड़ अनुवाद है। नागवर्मा की यह कृति मूलग्रंथ की विशेषताओं को सुरक्षित रखते हुए भाषा-शैली की दृष्टि से निज विशेषताएँ भी प्रकट करती हैं।

बारहवीं शती के प्रथम चरण में जीवित नागचन्द्र ने, जो 'अभिनव पंप' के नाम से प्रख्यात है 'मल्लिनाथ पुराण' और 'रामचन्द्र चरिते' पुराण की रचना की है। मल्लिनाथ पुराण जैन धार्मिक काव्य है जिसमें 19वें तीर्थंकर मल्लिनाथ का जीवन-चरित्र वर्णित है। रामचन्द्र चरिते पुराण का दूसरा नाम 'पंप-रामायण' है। पंप रामायण ही मुख्य रूप से नागचन्द्र के धवल यश का कारण है। पंप रामायण की रचना जैन आस्था के अनुसार हुई है। उसमें कुलधरों और इक्ष्वाकु राजाओं का जिनदीक्षा ग्रहण, दशरथ का वैराग्य, राम-वन गमन प्रसंग में जिन-दीक्षा वर्णन, विद्याधर, चारण भाट एवं रिक्त भट्टारकों का वर्णन आदि के कारण उसमें जैन-वातावरण आच्छादित है। परन्तु उत्कृष्ट काव्य-कला के कारण कन्नड़-साहित्य में उसको श्रेष्ठ स्थान प्राप्त हुआ है। रस-परिपाक पात्रों का चरित्र चित्रण, वर्णन नैपुण्य, भाषा शैली आदि के विचार से पंप-रामायण कन्नड़

के सत्काव्यों में स्थान पाने योग्य है। कथानक की विशेषताओं के अतिरिक्त दुरंत नायक के रूप में रावण का चित्रण भी उसमें कम आकर्षक नहीं है। पपंरामायण का रावण एक महान पंडित ज्ञानी, गुणवान और धीमान है। विधिवश तथा नारी व्यामोह के कारण उसका अधःपतन होता है। नागचन्द्र ने वीर की अपेक्षा शांत रस की अधिकप्रियता के साथ वर्णन किया है।

दुर्गसिंह का 'पंचतंत्र' – शांतिनाथ का 'सुकुमार चरिते' नयसेन का 'धर्मामृत', ब्रह्मशिव का 'समय परीक्षे' और कर्णपायं का 'नेमिनाथ पुराण' स्वर्णकाल के अन्य उल्लेख ग्रंथ है। स्वर्णकाल की प्रवृत्तियों के संबन्ध में संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है—(1) इस काल में जैन कवियों ने विशेष रूप से काव्य-रचना की। उन्होंने दो प्रकार के काव्य लिखे-- एक धार्मिक या आगमिक तथा दूसरा लौकिक। उनके लौकिक काव्यों में तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन मिलता है। रामायण, महाभारत आदि से उन्होंने काव्य के लिए वस्तु चुनी है। (2) इस काल के ब्राह्मण कवि नागवर्म प्रथम ने लक्षण ग्रंथ का प्रणयन किया है। (3) इस काल के सभी कवियों ने चम्पू शैली में काव्य रचना की। उन्होंने संस्कृत वृत्तों के साथ-साथ कंद, रगळे, अक्कर, त्रिपदी जैसे कन्नड़-छंदों का प्रयोग किया है। (4) इस काल के लौकिक काव्यों में अद्‌भुत और शांत तथा धार्मिक काव्यों में वीर और रौद्र रसों का कुछ प्रमुख रूप से वर्णन हुआ है। नागवर्मा प्रथम की 'कादम्बरी' इसका अपवाद है, उसमें श्रृंगार का प्राधान्य है। (5) भाषा की दृष्टि से विचार करेंगे तो ज्ञात होगा कि नयसेन के पूर्व कवियों ने संस्कृत-गर्भित शैली को पसंद किया। संस्कृत प्रभावाधिक्य को देखकर नयसेन ने इस प्रवृत्ति का खण्डन किया और कहा—'शुद्ध कन्नड़ में क्या संस्कृत मिलायी जा सकती है, क्या कोई प्राज्ञ घी और तेल को एक साथ मिलाएगा, इस प्रकार नयसेन का धर्मामृत साहित्यिक क्रांति का बीजवपन करता है।

बारहवीं शती के उत्तरार्ध में बसवेश्वर के द्वारा उक्त क्रांति ने व्यापक रूप धारण किया। राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में परिवर्तन के लक्षण दिखायी पड़े, बसवेश्वर ने निज भाषा में आत्म स्वरूप पहचानने की शिक्षा दी, स्वाभिमान को पुनः जागृत किया और सामाजिक संगठन का कार्य किया। आध्यात्मिक दृष्टि से उन्होंने आत्मस्वरूप को पहचानने की जो बात कही, साहित्य के क्षेत्र में उसका अच्छा परिणाम हुआ। कन्नड़-कविता 'मार्ग' से 'देसी' की ओर उन्मुख हुई। तदनुकूल विषय और छंदों का भी परिग्रहण हुआ। इन विशेषताओं को दृष्टि में रखकर इस काल को स्वतंत्र काल कहा गया। शिवशरण अथवा शिव भक्त कवियों की रचनाओं में शिव-भक्ति का प्राधान्य होने के कारण इस काल को शिव-भक्ति प्राधान्य काल भी कहा गया। वचन (भावात्मक गद्यगीत) का प्रादुर्भाव इस काल की अन्य विशेषता है। अल्लम प्रभु, बसवेश्वर, अक्कमहादेवी, चेन्नबसव, सिद्धराम आदि वचनकारों ने सुन्दर वचनों पर जादू का प्रभाव डाला। वचन 'वाङ्मय' कन्नड़-साहत्य की अपनी ही विशेषता है। इस काल में नवीनता के साथ कुछ चम्पू काव्य लिखे गये। ऐसे काव्यों में राघवांक का 'हरिश्चन्द्र काव्य' नेमिचन्द्र का 'लीलावती' और जन्न का 'यशोधर चरिते' उल्लेखनीय हैं। राघवांक के मामा और गुरु हरिहर क्रांतिकारी कवि थे। उन्होंने रगळे छंद में 'शिवगण-रगळे' की रचना कर 'रगळे' कवि की प्रसिद्धि प्राप्त की और गीतात्मक काव्य का नया मार्ग प्रशस्त किया। चम्पू शैली में 'गिरिजा-कल्याण' महाकाव्य की रचना की। महाकवि राघवांक के अन्य काव्य हैं—सिद्धराम पुराण, वीरेश्वर चरित, शरभ चारित्र्य और हरिहर महत्व। 'लीलावती' और 'नेमीनाथ पुराण' के प्रणेता नेमिचन्द्र की गणना भी महाकवियों में की जाती है। 'लीलावती' श्रृंगार रस प्रधान काव्य है। रुद्रभट्ट की रचना 'जगन्नाथ विजय' इस काल की एक विशिष्ट प्रबंध कृति है। उसमें अठारह 'आवासों' में श्रीकृष्ण के चरित का वर्णन है। ऊपर जन्न के 'यशोधर-चरिते' का

उल्लेख किया गया है। उसमें कुल चार अवतरण और 311 कंद पद्य हैं। आकार की दृष्टि से वह छोटा है, पर प्रकार की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

तेलुगु और कन्नड़ के कवि पाल्कुरिके सोमनाथ के ग्रंथों में 'शील संपादने' और 'सोमेश्वर शतक' आण्डय्या के 'कब्बिगर काव' एवं मल्लिकार्जुन द्वारा संपादित 'सूक्ति सुधार्णव' का नामोल्लेख भी यहाँ होना चाहिए। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि इस काल में कई नये प्रयोग हुए और साहित्य को समृद्ध करने के सुन्दर प्रयत्न हुए।

पंद्रहवीं शती के प्रारंभ में कन्नड़-साहित्य की धारा में पुनः परिवर्तन के लक्षण दिखाई पड़ने लगे। विजयनगर साम्राज्य की स्थापना के बाद उस साम्राज्य के राजाओं ने, विशेषतः श्रीकृष्णदेवराय ने तेलुगु और कन्नड़ के कवियों को आश्रय दिया। सत्रहवीं शती में उस साम्राज्य की कथा जब केवल इतिहास का विषय मात्र रही और कन्नड़-संस्कृति विच्छिन्न हो गयी तब मैसूर के राजाओं ने कन्नड़-साहित्य को प्रोत्साहित दिया। इस काल में वैष्णव-वाङ्मय का विकास हुआ। कुमारव्यास, कुमार वाल्मीकि, लक्ष्मीश, पुरंदरदास, कनकदास तथा अन्य 'दासकूट' (वैष्णव भक्त-समाज) के कवियों की रचनाओं से कन्नड़-साहित्य समृद्ध हुआ। विष्णु-भक्ति मुख्य रूप से उन कवियों की रचनाओं का प्रतिपाद्य होने के कारण हमने इस काल को विष्णु भक्ति प्राधान्य काल माना। समग्र रूप से विचार करें तो मध्यकाल की मुख्य प्रवृत्ति भक्ति ही कही जा सकती है। यह तो मध्यकालीन भारतीय साहित्य की विशेषता है।

इस काल के प्रमुख कवियों में कुमारव्यास अग्रणी है। विद्वानों के मतानुसार वे 1400-1430 ई. के आसपास वर्तमान थे। उनकी दो रचनाएँ हैं। महाभारत और ऐरावत। महाभारत इस अर्थ में 'समग्र' है कि उसमें आदिपर्व से गदापर्व की कथा का वर्णन है। संभवतः शेष पर्वों की रचना करना उनका उद्देश्य नहीं था। श्रीकृष्णदेवराय के दरबारी कवि तिम्मण्ण कवि ने उनकी आज्ञा के अनुसार आगे कुमारव्यास-भारत के शेष पर्वों की

रचना की। कुमारव्यास का 'भारत' कृष्ण-कथा है अतः उसके नायक कृष्ण ही हैं। उसमें भक्ति-रस, कवि प्रतिभा और कन्नड़पन के दर्शन कर सकते हैं। वह कन्नड़ का एक रत्न है। इस काल के कोई वैष्णव प्रबंधकार कवि कुमारव्यास के प्रभाव से वंचित नहीं है। इस संदर्भ में 'तोरवेरामायण' काव्य के कवि कुमार वाल्मीकि, 'कन्नड़-महाभागवत' के कवि चाटुविट्ठल नाथ आदि और 'कन्नड़-जैमिनी-भारत' के कवि 'कर्नाटक-कवि सूचतवन-चैत्र' लक्ष्मीश के नाम यहाँ बताये जा सकते हैं। अन्य प्रबंधकार वैष्णव कवियों में गोप कवि और नागरस के नाम भी विस्मृत नहीं कर सकते।

कर्नाटक संगीत और कन्नड़-साहित्य को समृद्ध करनेवाले कीर्तनकार वैष्णव भक्त, जिनको कन्नड़ में 'दास' कहते हैं, और जिनकी मण्डली 'दासकूट' के नाम से प्रसिद्ध है, इसीकाल में हुए। इन भक्तों के साहित्य को 'दास-वाङ्मय' कहा गया है। ये सभी दास माध्य-सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। यद्यपि नरहरि तीर्थ दासकूट के मूलपुरुष हैं, तथापि श्रीपादराय से 'दास-वाह्मय' की अविरल-परंपरा प्रचलित होने के कारण पहले उन्हीं का नाम लिया जाता है। उन्होंने पूजा के समय कन्नड़-गीत-गायन की पद्धति चलायी। उनके 'भ्रमरगीत', 'वेणुगीत' और 'गोपीगीत' प्रसिद्ध हैं।

पुरंदरदास 'दासशिरोमणी' हैं। वे व्यासराय जी के शिष्य थे। वे गुरु की प्रशंसा के पात्र बने और 'दासश्रेष्ठ' कहलाये। उनके पदों की संख्या चार लाख पचहत्तर हजार कही जाती हैं। परंतु आज तो बहुत कम पद उपलब्ध हैं। कर्नाटक संगीत के सर्वस्व त्यागराज स्वामी को भी पुरंदरदास से प्रेरणा मिली थी। पुरंदरदास के पदों से भक्ति, वैराग्य, विनय, समाज की आलोचना, समाज-प्रबोध, कृष्ण लीलाएँ आदि सभी विषय प्रतिपाद्य है। उनके पदों को 'पुरंदरोपनिषद्' कहा गया है। उनके पदों की तुलना हम सूरसागर के पदों से कर सकते हैं। कनकदास भी व्यासराय के शिष्य थे।

हरिभक्तिसार, रामधान्य चरित्रे, नल चरित्रे, तथा अन्य फुटकर पद उनके नाम से प्राप्त हुए हैं।

इस काल के वीरशैव कवियों में निजगुणशिवयोगी, मुप्पिन पॉषडक्षरी, सर्पभूषण, लक्कण्णा और गुब्बि मल्लणार्य जैसे संत तथा चामरस, विरूपाक्ष पण्डित और षडक्षरदेव जैसे प्रंबधकारों के नाम उल्लेखनीय हैं। निजगुण शिवयोगी एक पहुंचे हुए साधक थे। उनकी रचनाओं में 'शंभुलिंग' की छाप है। षडक्षर देव एक श्रेष्ठ प्रबंधकार हैं। उनकी रचनाएँ हैं—राजशेखर विलास, बसवराजविजय, शबर शंकरविलास और वीरभद्र दण्डक, चामरस की रचना 'प्रभुलिंगलीले' में अल्लमप्रभु के चरित का वर्णन है।

इस काल के जैन कवियों में सर्वाधिक प्रभाव रतनाकरवर्णि का है। 'भरतेश वैभव' उनका प्रसिद्ध महाकाव्य है जिसमें श्रृंगार रस के कई सुन्दर चित्र मिलते हैं। उसमें प्रबंध और गीतिकाव्य दोनों के गुण विद्यमान हैं। 'सांगत्य' छंद में उसकी रचना हुई है।

सर्वज्ञ नामक क्रांतिकारी कवि का आविर्भाव भी इस काल में हुआ। वे 1700 ई. के आसपास वर्तमान थे। संत कबीर की भाँति उन्होंने सामाजिक कुरीतियों और अंधविश्वासों का खण्डन किया। उन्होंने अपने विचारों के प्रवाह को 'त्रिपदी' नामक छंद में प्रकट किया है। 'सर्वज्ञ' संभवतः उनका नाम नहीं है, उपाधि होगी, क्योंकि परमेश्वर को छोड़कर और कोई सर्वज्ञ नहीं है। सर्वज्ञ कवि 'राष्ट्रकवि' और 'जनकवि' कहलाने योग्य हैं।

विजयनगर-साम्राज्य के पतन के बाद मैसूर-राज्य कन्नड़-साहित्य का केन्द्र बना। मैसूर के राजा चिक्कदेवराय (1672-1704) ई. स्वयं कवि थे। उन्होंने कई कवियों और लेखकों को आश्रय दिया था। उनकी 'गीतगोपाल' कृति जयदेव के 'गीतगोविंद' के ढंग पर रची गई है। उनके आश्रित कवि तिरुमलार्य और चिक्कुपाध्याय ने क्रमशः 'चिक्कदेवराय विजय' और

'दिव्यसूरि-चरित' नामक चम्पू काव्यों की रचना की है। उन्हीं के आश्रय में रहकर होन्नम्मा ने 'हदिबदेय धर्म' (पतिव्रता-धर्म) की रचना 'सांगत्य' गेय छंद मे की। हेळवनकट्टे गिरियम्मा इसी काल की लेखिका है जिनका दो रचनाएँ उपलब्ध हैं—'चन्द्रहास-कथा', और 'सीता-कल्याण'। 19वीं शती में मुद्दण, जिनका वास्तविक नाम नंदळिके लक्ष्मीनारायण (1869-1901) ई. उन्होंने वार्धक षटपदी में 'श्रीरामपट्टाभिषेक' की रचना की और 'रामाश्वमेध' की रचना गद्य में की। परवर्ती कवियों ने उनके प्रभाव को ग्रहण किया है।

कन्नड़ के प्राचीन तथा मध्यकालीन साहित्य का संक्षिप्त सर्वेक्षण प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि इसमें सभी कृतिकार और कृतियों के संबंध में समग्र विचार प्रस्तुत नहीं कर सके हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्राचीन तथा मध्यकालीन कन्नड़-साहित्य अपनी ही विशेषताओं से परिपूर्ण और समृद्ध है।

*****

कर्नाटक के संगीत, शिल्पकला और वास्तुशिल्प का संक्षिप्त परिचय

एक पाश्चात्य मानवता वादी ने कहा-'भारत जीवित कलाओं का संपन्न भंडार है।' यह युक्ति कर्नाटक के लिए भी लागू अक्षरशः होती है। कर्नाटक कलाओं का निधि निवास भी है।

मानवीय संबंधों की भाषा कला ही है; मानव की आत्माभिव्यक्ति कला के माध्यम से पूर्ण तथा संपन्न होता है। इसे समझने की शक्ति समस्त मानव जाती को ईश्वर प्रदत्त होती है। एक ओर जहाँ कला मनोभावों का कोमल स्पर्श करती है तो दूसरी ओर श्रेष्ठतम विचारों का बौद्धिक उत्कर्ष भी कला के विभिन्न रूपों में प्रतिबिंबित होता है। कला के संगीतात्मक कथा काव्यात्मक पक्ष वाचिक रूप में तथा अन्य सभी पक्ष अवचिक रूप में भाषा के इस उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। कुल मिलाकर 64 प्रकारों में कलाओं को विभाजित किया जाता है। संगीत, नृत्य, वाद्य आदि अन्य कलाओं से श्रेष्ठ माना गया है।

कला उसे कहा जाता है कि जब मानव आत्मा आनन्द से उद्वेलित होकर जो अभिव्यक्ति करती है वही इसे माना जाता है कि कला मानव हृदय की सौंदर्यानुभूति रूप-रंग, आकार ध्वनि आदि के माध्यम से वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्र-कला, नृत्य एवं संगीतादि कालाओं के रूप में प्रकट होती है। कला मानव के भावों, विचारों एवं कल्पना की द्योतक होने के कारण संस्कृति की परिचायिका है। यही कारण है कि प्रत्येक देश की कला वहाँ की संस्कृति से अनुप्राणित और स्थानीय विशिष्टताओं से अनुरंजित होती है। कर्नाटक में मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत एवं नृत्यकालों के कारणों आदर्श राजाओं के महत्वपूर्ण कर्तव्यों में कला कौशल को समुन्नत करना एवं कलाकारों को संरक्षण किया जाता है। प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, फलस्वरूप कर्नाटक की कला संस्कृति अत्यंत श्रेष्ठतम है।

संगीत का तात्पर्य

भारत अत्यन्त पवित्र तथा पुण्य भूमि है। इस देश में संगीत देवताओं के प्रसन्न करने तथा अपने भीतर देवत्व को जागृत करनेवाली कला माना गया है। इसलिए श्रुति माधुर्य के साथ कोमलतम अनुभूतियों को प्रकट करने में सार्थक होना संगीत की श्रेष्ठता की कसौटी मानी गयी है। संगीत की अभिव्यक्ति नाद से ही संभव है। नाद का अर्थ है, शब्द या ध्वनि। नाद ही संगीत का प्राण है। नाद तीन प्रकार का माना गया है--प्राणिभव, अप्राणिभव तथा उभय संभव। जो मुख आदि अंगों से उत्पन्न किया जाता है वह प्राणिभव, जो वीणा आदि से निकलता है वह अप्राणिभव और बाँसुरी से निकलाता है वह उभय संभव होता है। नाद के बिना गीत, स्वर, राग आदि कुछ भी संभव नहीं। नाद परज्योति या ब्रह्मरूप है तथा सारी सृष्टि नादात्मक है। सृष्टि की गोद में जन्मा व पला मानव भी नादप्रिय है। विद्वानों का यह कहना है कि संगीत कला अत्यंत प्राचीन है। मानव हृदय में उत्पन्न होनेवाले हर्ष, शोक, प्रेम आदि भावों को अभिव्यक्त करने में संगीत समर्थ माध्यम है। संगीत या नाद-माधुर्य के प्रभाव से मानव मात्र ही नहीं बल्कि पशु-पक्षी भी भावविभोर होकर सर हिलाते हैं। संगीत के नाद और लय में निमग्रन मानव, कुछ समय के लिए ही सही, संसारिक क्लेशों से मुक्त रहता है। उसके मन और हृदय को अपूर्व शक्ति मिलती है। अलौकिक शक्ति में मन के एकाकार हो जाने से आनन्दानुभूति होती है। इस आनन्दानुभूति के लिए संगीत ही प्रबल-प्रेरक शक्ति बन जाता है, और भक्ति का पोषक तत्त्व बनकर आत्म साक्षात्कार कराता है। संगीत मानव के लिए प्रकृति द्वारा प्रदत्त वरदान है।

कर्नाटक की संगीत-संस्कृति

सिंधु संस्कृति के लोग संगीत कला में अत्यंत आसक्त थे, क्यों कि यह बात सिंध प्रदेश में हुए उत्खन से प्राप्त वाद्य समग्रियों के अवशेषों से

स्पष्ट हो चुकी है। लगता है कि प्रारम्भ में संगीत लोक या देशी के रूप में ही रहा होगा बाद में वही वेद संगीत तथा शास्त्रीय संगीत के लिए मूलाधार बना होगा। लोक संगीत सहज और प्रकृति द्वारा प्रदत्त है। वह सामान्यतः कोई काम करते समय स्वाभाविक रूप से व्यक्त होता है, बैल गाडी चलाते समय, नाव खेते समय, चक्की से आटा पीसते समय, दही मंथन करते समय, धान कूटते समय, बीज बोते या पौधा रोपने समय, उनकी नाद श्रुति के अनुसार, पुरुष हो या स्त्री अपनी ध्वनि में उतार चढाव लाते हुए गाते हैं। इतना ही नहीं वे गाते-गाते नये गीत बांधते-व-सृजन करते हैं। इन लोगों को संगीत सामग्रियों की बिलकुल आवश्यकता नहीं है, क्यों कि आटा पीसने की चक्की, ओखली, गाडी, नाव आदि से निकलनेवाली ध्वनियाँ ही नाद, श्रुति या लय का कामकरती हैं। लुनाई-नृत्य सुग्गी-कुणित, कोलाट, डाँडिया, ढोल-नृत्य, कंसाळे नृत्य आदि के संदर्भों में अनेक राग उत्पन्न हो जाते हैं। श्रमिक या मजदूर के गाने से, उनकी थकान दूर दो जाती है, काम चलता है और उत्साह बढ जाता है। लोक गीतों के बिना विवाह में उल्लास नहीं होता है। नृत्य-गान के बिना पर्व-त्यौहारों में वैभव नहीं होता है। देशी या लोक गीतों के रागोंने ही परिष्कृत होकर शिष्ट संगीत या शास्त्रीय संगीत का दर्जा प्राप्त किया। बाद में शास्त्रीय संगीत, कला संपन्न व प्रतिभान्वित संगीत सार्वभौमों के स्पर्श से विकासोन्युख हो गया।

यह गर्व की बात है कि कन्नड की वैभवपूर्ण लोक कला कर्नाटक संगीत की बुनियाद बनी। भरतादि से प्रारम्भ हुये भारतीय संगीत को कन्नड की लोककला ने अपनी संस्कृति के सत्वों से पोषित किया, जिसके फल स्वरूप वह सर्वतोमुख रूप से विकसित हुआ और कर्नाटक संगीत के नाम से विख्यात भी हो गया। उत्तरभारत विदेशियों के, प्रमुखतः मुस्लिमों के आक्रमणों से आतंकित हो गया था, इसलिए वहाँ की सारी कलाएँ संकट में पड़ी। ऐसी स्थिति में कर्नाटक ने उन कलाओं की न केवल रक्षा ही की बल्कि उनके विकास के लिए भी प्रोत्साहन दिया। विशेषतः कर्नाटक संगीत

की उदारता के कारण भारतीय संगीत कला की रक्षा एवं प्रगति हुई। मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव से जब उत्तर भारत का संगीत बदलने लगा तब कर्नाटक ने उसको सांप्रदायिक बंधनों से बाँधकर रखा और दक्षिण में भारतीयता को बनाये रखने में खूब सहायता की। जिसके फलस्वरूप कर्नाटक संगीत के नाम से 'दक्षिण भारत संगीत' विख्यात हो गया।

कर्नाटक चक्रवर्ती सोमेश्वर भूलोक मल्ल (सन् 1116-1127 ने) अपने मानसोल्लस ग्रंथ में न केवल दक्षिण भारतीय संगीत को बल्कि भारतीय संगीत को भी कर्नाटक संगीत के नाम से आभिहित किया है। यह उल्लेखनीय बात है कि मानसोल्लास के पूर्व 5 वीं सदी में मातंग नामक कन्नड भाषी संगीतज्ञ ने बृहद्देशी शीर्षक से संगीत शास्त्र के ग्रंथ की रचना की थी। विद्यारण्य ने अपने संगीत सार ग्रंथ में कर्नाटक संगीत के साथ हिन्दूस्थानी संगीत के भेदों का समान रूप से संरक्षण किया है। सोमेश्वर के पुत्र जगदेकमल्ल ने संगीत चूडामणी नामक ग्रंथ लिखा है जो संगीत संबंधी अधिक विषय प्रस्तुत करता है। सारंगनाथ संगीत संबंधी अधिक विषय प्रस्तुत करता है। सारंगनाथ द्वार रचित संगीत रत्नाकर नामक ग्रंथ हिन्दूस्थानी संगीत तथा कर्नाटक संगीत के लिए प्रमाणभूत ग्रंथ है। गोपालनायक नामक प्रतिभाशाली संगीतकार मल्लिकाफर के साथ दिल्ली गया तथा वहाँ जाकर उसने अपने कर्नाटक संगीत से हिन्दुस्तानी संगीत को प्रभावित किया। इम्मडी प्रौढ़देवराय के राजदरबारी संगीतकार कल्लीनाथ और कल्लप्पा इन दोनों ने सारंगनाथ की रचना संगीत रत्नाकर का समग्र अध्ययन कर उस पर अपनी विद्वतापूर्ण समीक्षा लिखी और संगीत के विकास में एक नया मार्ग खोला। पुरंदरदास के संगीत का प्रभाव न केवल कर्नाटक में था बल्कि आस-पास के राज्यों में भी उसका प्रभाव दिकाई पड़ता है। इसी दौरान विजयनगर नरेशों के शासनकाल के संगीतकार रामामात्य ने 'स्वर मेळ कलानिधि' की रचना की। प्रस्तुत ग्रन्थ में संगीत से संबंधित अपने नये विचारों को प्रस्तुत किया।

16 वीं सदी में शिवगंगा के निकट जन्में पुंडरीक विठ्ठल कर्नाटक के एक युग पुरुष थे जो कर्नाटक संगीत के दिग्गज ही नहीं अपितु अकबर द्वारा सम्मानित हिन्दूस्थानी संगीत के विख्यात आचार्य के रूप में जाने गये। उनके लिखे संगीत ग्रंथ 'रगचन्द्रोदय', 'रागमंजरी' तथा 'नर्तन निर्णय' ये संगीत शास्त्र की अमूल्य रचनाएँ है। वेंकटमुखी का जन्म तीर्थहळ्ळी के निकट एक गाँव में हुआ। इन्होंने तंजावुर के नायक 'नरेश' के राज दरबार में राजाश्रय प्राप्त किया। इसी दौरान उन्होंने 'चतुर्दंडी प्रकाशिका' नामक ग्रंथ की रचना की, यह रचना संगीत शास्त्र के लिए आधार ग्रंथ माना जाता है। मातंग रचित बृकाशिका तक जिन जिन लोगों ने कर्नाटक संगीत की परंपरा को बनाये रखा वे सब कन्नड प्रदेश के संगीतकार रहे हैं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि संगीत शास्त्र पर कर्नाटक के संगीतज्ञों ने अब तक इतना कुछ व्यवस्थित एवं समग्र रूप से लिख दिया है कि अब नये विचारों को प्रस्तुत करने कि लिए कुछ शेष नहीं है।

इस प्रदेश में संगीत पर इतने ग्रंथ लिखे गये और इतने संगीतज्ञों का निर्माण हुआ, इसका कारण यह है कि यहाँ संगीत कला प्रारम्भ से ही समृद्ध थी, लोकप्रिय थी, लोकोत्तर थी तथा विकसित थी। संगीत कला का इस हद तक विकसित का कारण यहाँ का भव्य-दिव्य एवं राजसी वातावरण था। जिस प्रकार पंचभूतों में गान लहरियाँ लहराती रहती हैं, उसी प्रकार इस प्रदेश के लोगों की नस-नस में यह संगीत विराजमान है। यह संगीत प्रतिभा सर्वप्रथम उनलोगों के कंठों से फूट पडी जो निरक्षर थे जैसे-श्रमजीवी, शूद्रातिशुद्र ब्राह्मण स्त्री आदि। यही संगीत कालांतर में लोक संगीत के रूप में समझे जाने लगा। यही लोक संगीत शास्त्रीय संगीत का कारण बना गया। शास्त्रीय संगीत अपने विकास पर होने पर भी लोक संगीत का अपना प्रभाव और महत्व आज भी विद्यमान है। लोक संगीत के जीवंत उदाहरण है-बैलाटा, सुग्गिय कुणित लुनाई नृत्य कोलाटा

(डांडिया), कुम्मी, यक्षगान आदि। इन शैलियों से हमें ज्ञात होता है कि इन में रागों की अपेक्षा ताल को ज्यादा महत्व है। लोक संगीत का विकास रुका नहीं अबाध गति से होता ही जा रहा है।

कन्नड के शिलालेख, साहित्यिक ग्रंथ तथा चित्र एवं शिल्पकला आदि संगीत के महत्व को रेखांकित करते हैं। गमक, हरिकथा और यक्षगान आदि कलाओं में संगीत ही प्राण तत्व है साहित्यिक कृतियों तथा शिल्पकलाओं में संगीत, नृत्य तथा वाद्य से संबंधित जानकारी विपुलमात्रा में मिलती है। यहाँ तक कि राजस्थान के वैभव का कारण संगीत, नृत्य आदि ही हैं। जिस प्रकार कर्नाटक में कदम-कदम पर संगीत की रुन-झुन सुनाई देती है उसी प्रकार राजस्थान में नूपुरों की झंकार सुनाई पड़ती है।

जिस प्रकार हिन्दी के भक्त एवं संत कवियों ने संगीत के द्वारा लोगों को भक्ति मार्ग पर लाया उसी प्रकार कर्नाटक के दास तथा शरणों ने अपनी वचन-माधुरी से लोगों के मन में क्रांति के बीच बोये। बसवादि शरणों ने वचनों के अलावा गीतादि की भी रचना की है। यह ध्यान देने की बात है कि नाद और भाव की अपेक्षा विचारों तथा सिद्धांतों के प्रतिपादन को विशेष महत्व देते थे।

15वीं शति के अंत में निजगुण शिवयोगी नामक भक्त ने विवेक चिंतामणी नामक ग्रंथ की रचना की। यह ग्रंथ वेदांत तथा योग दर्शन का विश्वकोश माना जाता है। इस ग्रंथ में लेखक ने संगीत को भी योग मानकर उसके लिए एक विशेष अध्याय रखा, जिसमें संगीत के लक्षण, स्वर, रागादि की प्रक्रिया संबंधी विचारों को प्रस्तुत किया है। इसके अलावा संगीत पर मौलिक ग्रंथों की भी रचना की है।

कर्नाटक में दासों से पूर्व शरणों ने संगीत की भूमिका तैयार की थी, दासों ने इसी संगीत को उत्कर्ष के शिखर पर पहुँचाया, इसे शिखर पर ले जाने का प्रथम श्रेय पुरंदरदास को ही जाता है। कीर्तनों की रचना करने में पुरंदरदास के समकक्ष करकदास रहे। इनके भी पूर्व श्रीपादराय तथा

व्यासराय ने कीर्तन साहित्य की नांदी की थी, अर्थात् श्रीगणेश किया था। पुरंदरदास प्रारंभ से नवकोटी नारायण के नाम से विख्यात हैं, जिनका मूल नाम शीनप्प नायक था, जो एक रत्न पारखी थे, एवं धनाढ्य थे। वे अपनी पत्नी लक्ष्मीबाई की हरिभक्ति से प्रभावित होकर, स्वयं हरि भजन में लीन हो गये, तदनंतर अपनी सारी संपत्ति का दान कर श्री व्यासराय के शिष्य बने और गुरु की सेवा करते रहे और अंत में पुरंदरदास के नाम से जाने गये। जब पुरंदरदास भक्ति के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए तब कर्नाटक संगीत का भग्योदय हुआ। पुरंदरदास के आने से पूर्व ही कर्नाटक में भक्ति के लिए जमीन तैयार हो चुकी थी। भक्तों द्वारा बोये हुए भक्ति के बीज को पुरंदरदास ने अपने संगीत के जल से सींचा। पुरंदारदास ने अपने मधुर वाणी से माध्व मत का प्रचार किया। उन्होंने अपने समय के अव्यवस्थित संगीत कला को सुव्यवस्थित बनाया तथा लोक संगीत के रागों को शास्त्रीय संगीत के ढाँचे में डाला। इसी कारण वे कर्नाटक संगीत के पितामह महलाये।

पुरंदरदास ने सैकडों कीर्तनों की रचना की और उसके द्वारा उन्होंने कर्नटाक संगीत को सभी दिशाओं में फैलाकर कर्नाटक संगीत की एक मजबूत नींव तैयार की, जिस पर संगीत का व्यास पीठ निर्मित करने का श्रेय संगीत कला के त्रिमूर्ति को जाता है। उन में प्रमुख हैं तिरुवारुर में 1761 में जन्में त्यागराज। इनकी माता हमेशा पुरंदरदास के कीर्तन गया करती थीं, जिससे स्वयं त्यागराज भी प्रभावित हुए और वे संगीत की ओर आकृष्ट हुए। दासों की आराधना करते हुए उन्होंने संगीत क्षेत्र में अपने योग्य स्थान प्राप्त किया। त्यागराज जन्मे तमिल नाडु में सीखा सो कन्नड गीत और रचनाएँ तेलुग में लिखीं। अपनी मातृभाषा से उन्हें अपार प्रेम था।

इन त्रिमूर्तियों में अन्य दो हैं, श्री मातृस्वामी दीक्षित तथा श्यामाशास्त्रीजी। दीक्षित जी का जन्म कहीं और होने पर भी वे पले, बढे तिरुवारूर में जब कि शास्त्रीजी का जन्म तिरूवारूर में हुआ और वे वहीं

रहें। इस प्रकार तमिलनाडु का तिरुवारुर स्थान पुरंदरदास के बाद कर्नाटक संगीत का केन्द्र स्थान बन गया। उनके बाद की पीढी के संगीतकार पुरंदरदास को अपना गुरु मानते हुए कर्नाटक संगीत के क्षेत्र में साधना करते हैं वीणे शेषण्णा, बिडारम् कृष्णप्पा, वासुदेवाचार्य, टी चौडय्या, एम. एस. सुब्बलक्ष्मी, बाल मुरळी कृष्णा आदि कर्नाटक संगीत के कीर्तिध्वज को देश-विदेशों में फहराया। पहले मैसूर के राजदरबार में कलाकारों का बहुत सम्मान होता था, उनमें संगीतकारों का विशेष सम्मान किया जाता था, किन्तु अब यह इतिहास हो चुका है।

मूर्तिकला और शिल्पकला

मूर्तिकला का प्रधान उद्देश्य है-- अमूर्त को मूर्त रूप देना, अव्यक्त को व्यक्त करना ही है। ईश्वर से अधिक सूक्ष्म एवं अमूर्त क्या है! इसलिए आस्तिक मानव मन ने अपनी-अपनी कल्पनाओं के अनुरूप उसके अनेक रूप छैनी, हथोडे के माध्यम से टांके और आंके। आध्यात्मिक कन्नड संस्कृति का इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। कर्नाटक की वास्तुशिल्प में सानुपतिक सौंदर्य की अपेक्षा भावात्मक एवं कल्पनात्मक विभूति की ओर अधिक ध्यान दिया गया। यही कारण है कि सुगटित रंगपुष्टों और मांसपेशियों के उभारों चमत्कारों की अपेक्षा उत्मीलित, अर्धुत्मीलित नेत्र भंगिमाओं, शांत, मोहिनी मुस्कान, हाथ, पैर अन्य अंगों की विभिन्न कलात्मक मुद्राओं को कर्नाटक के शिल्पियों ने अधिक कौशल से रूपायित किया। अन्य कलाओं के समान मूर्तिकला भी साधना की पवित्रता की अपेक्षा रखती है, अनुभूति तथा कल्पना, यथार्थ और आदर्श का कलात्मक समन्वय ही श्रेष्ठ कलाकृतियों को जन्म देने में समर्थ हो सकता है।

कन्नड़ संस्कृति की वैभवोन्नति के लिए तथा विदेशियों की अपार प्रशंसा के लिए कर्नाटक की ललित कलाएँ कारणीभूत हैं या यों कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि ये कलाएँ कन्नड संस्कृति के ठोस प्रमाण एवं

मानदंड हैं। सामान्यतः द्रविड वास्तुशिल्प और शिल्प के उद्भम को सिंधु संस्कृति कालीन इमारतों और मूर्ति रचनाओं में ढूँढा जाता है। शिल्पकला पारंगतों का मत है कि अपनी कल्पकता तथा सृजनशीलता सारे संसार के लिए आदर्श मानेजानेवाले वास्तुशिल्प और शिल्प कर्नाटक में विद्यमान हैं। गुफाओं और जंगलों में निवास करनेवाले मानव जब कृषिकार्य पर अवलंबित हो गये तब आश्रय की आवश्यकता हुई तो उन्होंने झोंपडियों का निर्माण कर लिया। यहीं से नागरिकता के लक्षण पाये जाने लगे। धीरे-धीरे सुविधाओं की इच्छाओं के साथ-साथ सौंदर्य बोध भी बढ़ने लगा तो वास्तुशिल्प की परिकल्पना भी साकार होने लगी।

अपने और अपने परिवार के लिए घर बनालेने के बाद, अपने आराध्य देव के लिए भी एक मंदिर बनाने की इच्छा हुई। तब मानव मन विचार करने लगा कि उस भगवान जो सृष्टिकर्ता, जगत् रक्षक, सर्वांतर्यामी, सबसे सुन्दर, कवि-ऋषि, संत गुरु, आचार्य समुदाय की मूलपुरुष है कि-- मंदिर कैसा रहना चाहिए वह ऐसा हो, जो सामुदायक भक्ति का केन्द्र हो, पवित्रता का संकेत हो, एक समाज या समुदाय की मनोधर्माभिरुचि की अभिव्यक्ति का माध्यम हो!! निराकार दैवीशक्ति को साकार बनानेवाला प्रतिभासंपन्न शिल्पी या कलाकार दैवोन्माद में ही तल्लीन रहता है। वह दृश्य जगत से ही सब कुछ नहीं लेता। ध्यानमग्न होकर अपने इष्ट देवता का ध्यान लगाता है। उसके हृदय में ज्योति की अवतारणा होती है। उसी ज्योति में आकार प्रकार बनते हैं। अतः स्पष्ट है कि कला के प्रति श्रद्धा और सौंदर्य प्रज्ञा के साथ दैवोन्माद के योग से कर्नाटक वास्तुशिल्प या शिल्प सृजन के लिए प्रेरणा मिली है।

अशोक के शासन कला में बौद्ध धर्म के प्रचार के साथ, शिलालेखों व गुफांतरस्थ चैत्यालयों शिलामूर्तियों के जरिये कर्नाटक में वास्तुशिल्प का प्रारम्भ हुआ। वह कदंब नरेशों से लेकर, गंग, चालुक्य, राष्ट्रकूट, होय्सळ तथा विजयनगर के राजाओं के शासन काल तक विकसित एवं लोकाकर्षित

होकर उन्नति के शिखर तक पहुँच गया। इस बात के लिए हलसी और ताळगुंद के कल्लेश्वर, नरसिंह प्रणवेश्वर आदि प्राचीन मंदिर प्रत्यक्ष गवाह हैं।

चालुक्यों के शासन में शिल्पकला

चालुक्य नरेशों के मार्गदर्शन में बने ऐहोळे, बादामी तथा पट्टदकल्लु के वास्तुशिल्प व मूर्तिशिल्प दक्षिण भारत में न केवल नवीन और विशिष्ट ही है बल्कि उस समय के उज्ज्वल प्रतिभा सम्पन्न शिल्पकारों की उत्कृष्ट कलाओं के उदाहरण हैं। संख्याओं की दृष्टि से इन नगरों को मंदिरों के नगर कह सकते हैं। मुखमंडप, नवरंग, सुकनासी, गर्भगृह, गोपुरादि उस समय के मंदिरों के अंग थे। मेगुति, महाकूट आदि प्रदेशों के पडौसी गांवों में चालुक्य शैली के अनेक सुन्दर मंदिर हैं।

उसी समय के बादामी के गुफांतरस्थ मंदिर आज भी ध्यानाकर्षित करते हैं। ये शैव और वैष्णव गुफाएँ हैं, एक चैत्यालय जैन मंदिर की गुफा भी है। पट्टदकल्लु में स्थित विरूपाक्ष मंदिर सौंदर्य की दृष्टि से उस समके समस्त मंदिरों में औव्वल माना जाता है। मल्लिकार्जुन मंदिर, गळगनाथ और जैननारायण मंदिर आदि कलाकृतियाँ चालुक्यकालीन वैभव को दर्शाती हैं।

इटगी के महादेव मंदिर, बनवासी के मधुकेश्वर, लक्कुंडी के काशी विश्वेश्वर मंदिरादि कल्याणी चालुक्यों के शासन कालीन प्रसिद्ध मंदिर हैं। वील ड्यूरेंट, मेडोस टेलर, जेम्स फर्गूसन आदि ख्यात विद्वानों ने इटगी की शिल्पकला को देखकर उसकी प्रशंसा में यह कहा है कि इटगी की शिल्पकला वर्णनातीत है, उसके बारे में कहने के लिए हमारे पास शब्द ही नहीं हैं।

गंग कालीन शिल्पकला

गंगों के समय में जैन मत उन्नत्ता को प्राप्त रहने के कारण जैन विहारों, चैत्यालयों का निर्माण हुआ। तीर्थंकरादि शलाका-पुरुषों की प्रतिमायें कर्नाटक भर में सुशोभित होनेलगी हैं। श्रवणबेळगोळ तथा वहाँ स्थित भुवन-मोहक बाहुबली की भव्य प्रतिमा इस प्रदेश के शिल्पकलाकारों की अपूर्व कला-सामर्थ्य के लिए गवाह है। इतनी बड़ी प्रतिमाएँ सारे विश्व में अत्यंत विरल हैं। फार्गूसन का मत है कि इस से बड़ी, भव्य और आश्चर्यचकित करनेवाली मूर्ति इजिप्त को छोड़कर अन्य किसी भी देश में नहीं है। ऐसा लगता है कि मानवीय समस्त सद्‌गुण इस प्रतिमा में ही संकलित हैं। इस प्रतिमा को देखनेवालों को ऐसा अनुभव होता है कि उसके मुख में मुसकुराहट है और उससे प्रेम और शांती का संदेश मिल रहा है। श्रवणबेळुगोळ के अतिरिक्त कार्कळ, वेणूरु, एलवाल, तिप्पूरु आदि स्थानों में भी छोटे आकारवाली प्रतिमाएँ विद्यामान हैं। मूडुबिदरे के हज़ार खम्बोंवाला चैत्यालय भी उल्लेखनीय शिल्प है। जैन साहित्य और जैन शिल्प कलाओं से कर्नाटक अत्यंत समृद्ध है।

अचेतन पाषाणों को अपनी कलात्मक प्रतिभा से सचेतन बनाने की क्षमता कर्नाटक के शिल्पकलाकारों में विद्यामान है, वे इन मूर्तियों से बातें करवाते हैं, इन्हें नचवाते हैं। उन्होंने इस मूर्तियों में इतना कौशल्य भर दिया है कि जो भी देश-विदेशीय रसिक यात्री इन्हें देखते ही आनन्द विभोर हो जाते हैं और प्रशंसा की बौछार कर देते हैं। यह कर्नाटक वासियों के लिए बड़े गर्व की बात है।

राष्ट्रकूटों के समय की शिल्पकला

राष्ट्रकूट नरेशों के शासनकालीन मंदिरों में गुफांतरस्य मंदिर अत्यंत सुन्दर कला-कृति माने जाते हैं। एल्लोरा और ऐलिफेंटा गुफाएँ उस समय की कलाकृतियों के प्रमुख केन्द्रमानी जाती हैं। पहले कृष्ण के शासन

कालीन शिल्पकलाकारों ने चालुक्य और बौद्ध दोनों शैलियों की मिश्रित एक नयी शैली में कलाकृतियों का निर्माण की मिश्रित एक नयी शैली में कलाकृतियों का निर्माण किया है। दशावतार गुफा, कैलास मंदिर, रामेश्वर गुफा, इन्द्र सभा आदि प्रमुख शिल्प हैं। शिव और विष्णु की लीलाएँ दशावतार गुफा के लिए प्रमुख वस्तु रही हैं। लगभग दो सौ फीट पत्थर काटकर बनाई कयी इन्द्र सभा शिल्पकला कृतियों में बेजोड़ है। वहाँ एक चैत्यालय भी है। कहा जाता है कि यह जैन मंदिर नृपतुंग के समय का है।

राष्ट्रकूटों के समय में निर्मित कैलास मंदिर विश्वविख्यात वास्तुशिल्पों में से एक है। बृहदाकार शिला को काटकर यह मंदिर निर्माण किया गया है। संपूर्ण पत्थर से निर्मित यह मंदिर देखनेवालों में यह भ्रम उत्पन्न करता है कि नीचे से लेकर ऊपर तक बांधगयी इमारत है। यहाँ तक कि यह मंदिर आधुनिक कालीन शिल्पियों को भी भ्रमित करता है। इस मंदिर को बनाने में शिल्पकलाकारों की ऊर्वर कल्पना शक्ति, कला-प्रतिभा, साहस प्रवृत्ति, औचित्य ज्ञान तथा दैव भक्ति आदि का योगदान रहा है। एल्लोरा की गुफाओं जैसी ही सात गुफाएँ एलिफेंट द्वीप में विद्यामान हैं। कन्नड के शिल्पकारों द्वारा बनाई गई मूर्तियाँ-त्रिमूर्ति प्रतिमा, पार्वती कल्याण, अर्धनारीश्वर आदि इन गुफाओं में हैं।

होय्सळ कालीन शिल्प

कर्नाटक वास्तुशिल्प का सुवर्णयुग होय्सळ नरेशों के शासनकाल को माना जाता है। कर्नाटक के शिल्पकला-वैभव का चरमोत्कर्ष इस काल में हुआ। बेलूरू, हळेबीडु तथा सोमनाथपुर मंदिर स्वर्गीय सौंदर्याभा, कराते हैं। शिल्प और वास्तुशिल्प का औचित्य पूर्ण सुन्दर समावेश अन्यत्र दुर्लभ है। ये कलाकृतियाँ धर्म, इतिहास, नृत्य तथा जीवन साम्प्रदायों को प्रतिबिंबित कराती हैं। शिल्प कृतियाँ छोटी हों या बडी परन्तु परिपूर्ण कला कृतियाँ ही हैं। सारे विश्व में ही भारत के मंदिरों में लक्षित होने वाली

कला सूक्ष्मता व कौशलता दुर्लभ है। ध्यान देनेवाली बात यह है कि बेलूरु और हळेबीडु के मंदिरों में दिखाई देनेवाली कर कुशलता तथा वैभवपूरित-कल्पना भारत के किसी भी अन्य मंदिर में लक्षित नहीं हैं। द्वारमंडप तथा मूर्तियों के मुखों को सौंदर्य युक्त बनाने में कलाकारों का परिश्रम सार्थक हुआ है। जेम्स फर्गुसन के अनुसार यह परिश्रम सारे विश्व में ही बेमिसाल है।

सामान्यतः होय्सळों के मंदिरों के निछले भाग नक्षत्राकार के होते हैं उनके अनुरूप ऊँचे धरातल पर मंदिर निर्मित हुये हैं। मंदिरों की दीवारें महाभारत व रामायण की कथाओं को व्यक्त करनेवाली शिला प्रतिभाओं से सुशोभित हैं। साथ ही इन मूर्तियों के साथ-साथ अनेक प्राणी व सस्य-शिल्प भी हैं। शिखार तक पहुँचते-पहुँचले ये मंदिर सूच्याकार को प्राप्त करते हैं। उनके खम्बे गोल गोल हैं और शिल्पकला यहाँ भी दिखाई देती है। मदनिका मूर्तियों के निर्माण में काठिण्य रहित पत्यरों का उपयोग किया गया है। मंदिर के भीतर भी कला-कौशल्य से युक्त कार्य हुआ है जिसे देखकर आश्चर्य होता है। होय्सळ शैली के विख्यात मंदिर बेलूरु का चन्नकेशव मंदिर, हळेबीडु का होय् सळेश्वर मंदिर, सोमनाथपुर का केशव मंदिर दोड्डुगद्दवाळळी का लक्ष्मी मंदिरादि हैं। नुग्गेहळ्ळी का लक्ष्मी नरसिंह, बसराळी का मल्लिकार्जुन, नागमंगल का सौम्य केशव, होसहोळली का लक्ष्मी-नारायणादि इस शैली के सैकडों मंदिर कर्नाटक में हैं। सञ्च पूछा जाय तो ये ही कर्नाटक संस्कृति की संपत्ति हैं।

विजयनगर कालीन शिल्पकला

कर्नाटक संस्कृति की प्रमुख विशेषता यह है कि न केवल नरेशों ने मंदिर बनवाये बल्कि रानियों, मंत्रियों, सेना नायकों, तथा गॉव के प्रमुखों ने भी अनेक मंदिर बनवाये। कर्नाटक का वास्तुशिल्प विजयनगर के नरेशों के शासनकाल में कला की चरमसीमा तक पहुँचगया था। इन नरेशों ने

केवल कर्नाटक के भीतर ही मंदिरादि वास्तुशिल्प के निर्माण में सहयोग नहीं दिया, बल्कि कर्नाटक प्रदेश के बाहर भी अनेक मंदिरों को बनवाया, पुराने मंदिरों को नई कलात्मक ढंग से अलंकृत किया। तिरुपति, कांची, श्रीरंगम्, मधुरै आदि प्रख्यात नगरों के मंदिरों की ओर भी उनका ध्यानाकर्षित हुआ था। लेपाक्षी, श्रृंगेरी आदि मंदिरों की ओर भी उनका ध्यानाकर्षित हुआ था। लेपाक्षी, श्रृंगेरी आदि मंदिरों को उन्होंने ऐसा सजाया जिसके कारण विश्व का ध्यान इन मंदिरों की ओर आकर्षित हुआ। इस समय के वास्तुशिल्प संबंधी अधिक ज्ञान प्राप्त करना है तो हंपे का प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहिए। हंपे के तथा कन्नड संस्कृति को दर्शानेवाली शिल्पकला कृतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। प्रमुख मंदिर के ईदगिर्द निर्मित मंडप आदि उसकाल की प्रमुख शिल्प विशेषता है। खम्बों तथा गोपुरों में कौशलकार्य होने के कारण कला की उज्जल प्रतिभा लक्षित होती है। ऐसा लगता है कि श्रृंगेरी के विद्याशंकर मंदिर, हंपे के विरूपाक्ष मंदिर तथा हजार रामस्वामी मंदिर को देखने के लिए सूर्य-चन्द्र आदि हर समय आया करते हैं, और समस्त कला-सौंदर्य एकत्रित होकर यहाँ सुशोभित हैं हंपे अब खंडहर नहीं है, वह विश्व के वास्तुशिल्प कलाकारों, पुरातत्व शास्त्रज्ञों, इतिहासकारों को आकर्षित करनेवाला प्रमुख केन्द्र है।

भारतदेश को विशेषतः कर्नाटक को हमेशा मूर्तिशिल्प के इतिहासकारों स्मरण करते हैं क्यों कि कर्नाटक में वास्तुशिल्प और शिल्पकलाओं का मणिकांन संगम है। कलात्मक मूर्तियों के कारण ही मंदिरों में आकर्षणीयता बड़ती है। जहाँ मूर्तिपूजा की पद्धति प्रचलित है वहाँ मूर्तिकला और शिल्पशास्त्र को प्रमुखता मिली है। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि बौद्ध जैन धर्मों के कारण शिल्प और शिल्प शास्त्र को प्राधान्यता प्राप्त हुई। अचेतन पत्थरों में चैतन्य भरने का प्रयास कर्नाटक के शिल्पकलाकारों ने किया है। कला के प्रति श्रद्धा और साधना के योग से

निर्मित कला की सूक्ष्मतम रेखाओंवाले इन पाषाणों के सचेतन सौंदर्य की अक्षयवाली को हृदय के भीतर का देवता सुन सकता है।

इसी विश्वास के कारण पत्थर के वे देवता जो इतर संस्कृतियों में कुफ् या धर्म का निकृष्टतम रूप माने जाते हैं, कर्नाटक के जन-मानस श्रद्धा और प्रेम को युग-युग से अवलम्ब देते आये हैं। मंदिरों में अपने मन के देवता की खोज में आनेवालों को ध्यानस्क, शांत, भयहारिणी दृष्टि और आशिर्वादमयी, वरद मुस्कानों ने संसार की बाधाओं, कठिनाइयों, विपत्तियों और पतनकारी अनुरक्तियों पर शांतिपूर्वक विजय प्राप्त करने की प्रेरणा दी है।

कर्नाटक-शिल्प संस्कृति की महत्ता

कन्नड के शिल्पकलाकारों का योगदान कर्नाटक के शिल्प संस्कृति को समृद्ध बनाने में अत्यमूल्य है। इन कलाकारों के द्वार निर्मित श्रवणबेळगोळ के गोम्मटेश्वर की भव्य प्रतिमा गंग नरेशों के शिल्पकला प्रेम को सदा स्मरण दिलाती है। सन् 1200 में बोप्पण पंडिता नामक प्रतिष्ठित कवि ने इस प्रतिमा को देखकर प्रातःस्तुत्य एक भक्तिगीत की रचना की है। इससे ज्ञान होता है कि गोम्मटेश्वर बाहुबली की प्रतिमा कितनी सुन्दर और कला कौशल्यपूर्ण है।

बेलूर के मंदिर की शिलाबालिकाओं के सौंदर्य के संबंध में क्या कहना है...!! रसिकों के लिए तो विशिष्ठ भंगिमाओं की ये प्रतिभायें स्वर्गानुभव कराती हैं। खेद के साथ कहना पडता है कि इस शिल्पकला का होय्सळों के साथ ही अवसान हुआ, यह एक ऐतिहासिक दुरंत की बात है। मगर उग्रनरसिंह, कडलेकाळु गणेश जैसी विजयनगर कालीन कलाकृतियों ने शिल्पकला परम्परा को बनाये रखा है।

जब विजयनगर साम्राज्य की कीर्ति ने एशिय तथा युरोपित देशों को आकर्षित किया तो तब तक गुल्बर्गा, बीदर, गोल्कोंडा तथा विजापूर

आदि मुस्लीम शासकों के आधीन में थे। हिन्दु और मुस्लीम संस्कृतियाँ अलग अलग ही रहकर विकासोन्मुख हो रही थीं। अतः मुस्लिम वास्तुशिल्प भी अलग ही विकसित हुआ। मुस्लीम संस्कृति में तो मूर्तिशिल्प के होने का गुंजाइश ही नहीं है। अतः यहाँ वास्तुशिल्प के राजमहल, मस्जिद तथा कब्रों में अपना वैभव दिखाया है। कमानों तथा गुंबजों की शैली में ही वास्तुशिल्प के लक्षण पाये जाते हैं।

सामान्यतः मुस्लिम नवाबों ने पर्षिया और पश्चिम एषिया के देशों से वास्तुशिल्पियों को बुलालिया था। इसलिए उनके द्वारा निर्मित वास्तुशिल्प में विदेशीय प्रभाव लक्षित होता है। मगर ध्यान देनेवाली बात यह है कि इन विदेशी शिल्पियों के आधीन काम करनेवाले लोग कर्नाटक के थे। अतः परोक्ष रूप से कन्नड की प्रतिभा ने इन शिल्पों के निर्माण में योगदान दिया है। कर्नाटक के मुस्लिम शिल्प को 'डेक्कन शैली' का नाम इसी के कारण दिया गया होगा। गुल्बर्गा का जमीमस्जिद तथा विजापुर का गोलगुंबज आदि मुस्लिम संस्कृति के प्रतिष्ठित वास्तुशिल्प के सुन्दर उदाहरण हैं।

इसके अलावा कर्नाटक के सामंतों और मांडलीकों के महलों में, नगरीय तथा ग्रामीण प्रदेश के अमीरों के घरों राजवाडे में भी शिल्पकला पत्तों के पीछे छिपे फूलों की तरह विकसित है। लगता है सांस्कृतिक अनुसंधाता विद्वानों का ध्यान उस ओर नहीं गया।

चित्रकला संस्कृति

भारत की सुरम्य प्राकृतिक सम्पदा ने चित्रकला के लिए यहाँ के शिल्पियों को विस्तृत फलक प्रदान किया है। सिंधु संस्कृति में मृतकों के अवशेषभरे मटकों पर रेखाचित्र अंकित किये जाते थे। चित्रकला में कर्नाटक प्रदेश का योगदान कम नहीं रहा। अजन्ता बाग, बादामी आदि के कलात्मक गुफाचित्र इस कला के उज्ज्वल अतीत के सजीव प्रमाण हैं।

चालुक्य सोमेश्वर ने अपनी अभिलाषितार्थ चिंतामणि में शिल्प संगीतादि कलाओं की तरह चित्रकला की समीक्षा करवाई है। चित्रकला अपनी कृति में वर्ण रेखाओं के द्वारा अद्भुत संसार का सृजन करता है। दीवरों कपडों, वृक्षों, पत्तो, कागजों जैसी विविध भित्तियों पर चित्र बनाये जाते हैं। चित्रांककित करने के पहले भित्तियों को तौय्यार कर लेने और रंगों को मिलाने के तंत्र-विधान को जान लेना पड़ता है। देश कालानुसार वातावरण, वैविध्यमय वेष-भूषा निर्माण में और अनेक देवी-देवताओं तथा मनुष्यों के चित्रांकन में चित्रकार को असामान्य कल्पना कौशल की आवश्यकता होती है।

कर्नाटक के अनेक स्थानों पर शिलावर्ण चित्र भी पाये जाते हैं जो विरले ही मिलते हैं। रायचूर जिले के पहाडी प्रदेशों-हिरेबेणकल तथा आनेगोंदी-में बदामी के पास महाकूट में, चित्रदुर्ग जिले के अंकलगी मठ आदि में ऐसे चित्र पाये गये हैं। जमखंडी के निकट गोंबेगुड्डु नामक एक स्थान है, वहाँ पर भी ऐसे चित्र विद्यामान हैं, जो ई. पू. एक हजार वर्ष के पहले के माने जाते हैं।

अजंता, एल्लोरा, बादामी, एलिफेंटा तथा लेपाक्षी में जो चित्रकलाएँ पायी गयी हैं वे सब गुफाओं या मंदिरों की दीवारों पर निर्मित हैं। ये चित्र शातवाहनों, वाकाटकों, चालुक्यों, राष्ट्रकूटों तथा विजयनगर नरेशों के शासनकालीन हैं। विजयनगर के समय में ही बहमनी राज्यों में विकसित इस चित्रकला पद्धति को डेक्कन शैली कहा जाता है। डेक्कन शैली में बनाये गये चित्रों में रागमाला चित्र प्रमुख एवं उल्लेखनीय हैं। हिन्दुस्तानी संगीत के रागों को वर्णों के द्वारा अभिव्यक्त करने में कर्नाटक के कलाकारों जो सफल प्रयत्न किया वह अत्यंत प्रशंसनीय हैं। ऐसा लगता है कि कर्नाटक में इस तरह का जो प्रयत्न हुआ है, वह अन्यत्र शायद ही हुआ हो।

बादामी की गुफाओं में बनाये गये हिन्दू धार्मिक भक्तिचित्र इनसे भी पुराने हैं। बादामी की चित्रकला का प्रभाव अन्य प्रदेशों पर भी लक्षित होता है। तब अजंता निजामों द्वारा शासित राज्य के अंतर्गत था, उस सरकार ने उन चित्रों की रक्षा में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई। इसके अलावा कुछ अधिकारी अपने यहाँ आये आतिथियों को संतुष्ट करने के लिए यहाँ के चित्रों को काट कर उन्हें समर्पित किया करते थे। अतः ऐसे चित्रों की रक्षा नहीं हो पायी ऐसा लगता है कि पत्थर की दीवारों पर चित्र बनाने के पूर्व भित्तियों को तैयार करने की कला अनेक सालों के अनुभव व अभ्यास के फलस्वरूप रूढ़ हुई होगी। रंगों के निर्माण में भी यही बात रही होती। अजंता के कई चित्र यद्यपि नाश हुये हैं, तथापि बचेहुए एवं सुरक्षित चित्रों की संख्या कम नहीं है। इनमें बुद्ध के वृतान्त व जातक कथाओं से सम्बन्धित चित्र ही अधिक हैं। पर्षिया देश के राजदूत को द्वितीय पुलकेशी द्वारा स्वागत करता हुआ चित्र एकदम विशिष्ट है और उल्लेखनीय भी है। ध्यानदेनेवाली बात यह है कि समस्त दक्षिण भारत के चक्रवर्ती कहलानेवाले पुलकेशी ने ही विदेशी राजदूतों का सहर्ष स्वागत किया है और किसी राजा ने नहीं। यह विषय अच्छी संस्कृति का जीता जागता उदाहरण है।

बादामी के गुफा-चित्रों से लेकर विजयनगर के शासनकालीन चित्रों तक चित्रकला की एक लम्बी परंपरा रही है। विरूपाक्ष मंदिर की विमान सदृश छत अनेक पौराणिक दृश्य के चित्र विद्यामान हैं। साथ ही विद्यारण्य के जीवन से सम्बन्धित एक घटना का भी चित्रांकित है। यदि विजयनगर कालीन चित्रकला के दर्शन द्वारा अपनी आँखों को संतुष्ट कराना है तो लेपाक्षी जाना होगा। अब वह आंध्रप्रदेश के अनंतपुर जिल्ले के अंतर्गत आता है। यहाँ के वीरभद्र मंदिर के भित्ति चित्र यद्यपि वायुगुण की चपेट से निस्तेज हुये हैं तथापि अब भी नेत्रानंद प्रदा हैं। ये सारे चित्र

पौराणिक विषयवस्तु के आधार पर बने हैं और उस समय के जीवन पद्धति तथा उन लोगों की अभिरुचियों को समझने के लिये अत्यंत सहायक हैं।

राष्ट्रकूट के नरेशों का आधिपत्य महाराष्ट्र के कई भागों पर भी था। पहले कृष्ण ने एल्लोरा की गुफाओं में शिल्प के साथ-साथ चित्रकला को भी समृद्ध बनवाया। बौद्ध तथा हिन्दू धर्मों के साथ-सकाथ जैन धर्म की विसंगतियाँ भी शिल्प व चित्रकला की वस्तु बनीं।

अथणी, निप्पाणी तथा नरगुंद आदि गाँवों में दो सौ वर्ष पहले की चित्रकला कृतियाँ विद्यमान हैं, जिनकी ओर लोगों का ध्यान बिलकुल नहीं गया। ख्यात लेखक डॉ. शिवराम कारंत जी ने अपनी एक पुस्तक में यह लिखा है कि अथणी के वीरशैव मठ से सम्बन्धित निप्पाणी कारवाड नामक पुरानी इमारत में जो आदिलशाह के जमाने की है-भित्ति चित्र के अनेक चिन्ह पाये जाते हैं। जिन पर चूना लगाने के कारण वे स्पष्ट दिखाई नहीं देते हैं।

श्रवणबेळगोळ के चैत्यालय में चित्रकला का भंडार ही है। उनमें से कुछ चित्र प्राचीन अवश्य हैं। दखनी चित्रों की तरह इनमें विदेशी झंकी किंचित् भी नहीं मिलती है। यहाँ के चित्रों के लिएजैन पुराण की कथाओं ने अधिक वस्तु प्रदान की है। इनके अतिरिक्त सामाजिक जीवन से सम्बन्धित चित्र भी अधिक संख्याओं में पाये जाते हैं। इन में राजमहल के शानदान व्यक्ति भी हैं। और सामान्य लोग, शिकारी तथा दिगंबर सन्यासी भी हैं। वेष-भूषा व आभूषणों से उनको पहचान सकते हैं।

बेंगलोर से पूना जानेवाले राजमार्ग पर तुमकूर से 20 किमी दूर पर सीबी नामक गाँव है। वहाँ दो सौ साल पहले निर्मित नरसिंह मंदिर है। उसके दालानचित्र लोककला शैली में बनाये गये हैं। यहाँ लोक कला की संपन्न प्रतिभा लक्षित होती है।

टिप्पु सुल्तान के शासनकाल में रचित श्रीरंगपट्टण के चित्र लोक विख्यात हैं। ये चित्र उनके राजमहल तथा दरिया दौलत आदि इमारतों की

दीवरों, खम्बों तथा कमानों पर विद्यामान हैं। यहाँ पर सेना और युद्धों के चित्र प्रमुख हैं। इन में हैदराली और टिप्पु के नेतृत्व में शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाले चित्र चित्ताकर्षण करते हैं। अंग्रेजों की सहायता करने के लिए आये निजाम के चित्र चित्ताकर्षण करते हैं। अंग्रेजों की सहायता करने के लिए आये निजाम के चित्र भी इनमें शामिल हैं। टिप्पु के पूर्व एवं समकालीन राजाओं के राजदरबारों के चित्र अत्यंत सुन्दर हैं। ऐसा लगता है कि इन चित्रों को अंग्रेजों या मैसूर के राजाओं ने टिप्पु की मृत्यु के बाद बनवाया होगा। ये सारे चित्र मुस्लिम शैली के नहीं हैं, बल्कि बाहर से आयात किये गये रंगों का उपयोग इन को बनाने में हुआ हैं।

मैसूर के जगन्मोहन राजमहल के चित्रशाला में रचित चित्र कला कृतियाँ संख्याओं में अधिक होने के साथ-साथ गुण विशेषों में स्तरीय माने जाते हैं। मुम्मडी कृष्णराजओडेयर के शासनकाल में निर्मित यह चित्रशाला अमूल्य एवं सुन्दर चित्रकला कृतियों से संपन्न है। राजमहल के तलमंजिल व पहली पंजिल में बनाये गये चित्र अत्यंत मनोहरी हैं, इन में से हाथी के दंत, एवं चंदन की लकडी से बनायी गयी कलाकृतियाँ ध्यानाकर्षित करती हैं। दूसरी मंजिल में मुम्मडी कृष्णराज ओडेयर कालीन सुन्दर भित्ति चित्र विद्यमान हैं। यह सर्वविदित है कि मैसूर के नरेशों ने अनेक चित्रकारों को आश्रय दिया था। इन चित्रकारों द्वारा रचित चित्र भी यहाँ पर देखा सकते हैं। इन चित्रकारों में से शिकारीपुर के तिप्पाजी प्रमुख हैं। इसकी कुरुक्षेत्र कलाकृति देखनेवालों का मन मोह लेती है। मैसूर के राजाओं और उनके परिवार से सम्बन्धित कई चित्र यहाँ पर विद्यमान हैं। टिप्पु अपने पुत्रों को अंग्रजों के वश में देनेवाले दृश्य का चित्र भी इनमें शामिल है। इन दिनों में भारत के अनेक भागों से लाये प्रसिद्ध चित्रों को भी यहाँ दर्शनार्थ रखे गये हैं।

आधुनिक काल में कर्नाटक की चित्रकला अविच्छिन्न रूप से समृद्ध हो रही है। विश्व के माने हुए चित्रकला कारों में के वेंकटप्प का नाम

उल्लेखनीय है। इनके निर्मित प्रसिद्ध सुन्दर चित्र मैसूर के राजमहल और वेंकटप्पा चित्रशाला में विद्यमान हैं। यह अत्यंत हर्ष का विषय है कि बेंगलोर में श्री नंजुडरायजी ने चित्रकला परिषद की स्थापना की है। इससे चित्रकलाकारों को अत्यंत प्रोत्साह प्राप्त हो रहा है। आधुनिक कर्नाटक की चित्रकला को समृद्ध करने में मिणजगी, हेब्बार, नंजुडस्वामी, रूमाले चन्नबसवय्य, पी आर तिप्पेस्वामी, तथा गंजीफ रघुपति भट्ट का योगदान सराहनीय है।

हरदन हळ्ळी के दिव्यलिंगेश्वर मंदिर के दालान के छाजन पर चित्रों का भंडार है। इन दिनों में छाजन शिथिल होने के कारण ये चित्र विनाश की स्थिति में हैं। महाभारत, भागवत तथा शिवपुराणादि इन चित्रों की विषय सामग्रियाँ हैं। नवीन शोधकार्य के फ़लस्वरूप चामराजनगर, तलकाडु, बोप्पनगौडन पुरर आदि स्थानों में कई चित्र प्राप्त हुए हैं। इसी तरह के शोधकार्य से ग्रामीण मंदिरों व अमीरों के घरों में ऐसे अनेक चित्र के मिलने की संभावना है। पालकी, पुराने बर्तनों, पालनों, गृहोपयोगी सामग्रियों कपडों व नाटक के पहदों पर लक्षित होनेवाले चित्र तत्कालीन जनता की रसिकता को व्यक्त कहते हैं। परम्परागत रंगोली कला भी इनसे भिन्न नहीं है। उपयोगी कलाओं में भी लोगों की सौंदर्यदृष्टि व सृजनशीलता लक्षित हैं।

प्राचीनकाल में पत्तों पर काव्यादि लिखने की पद्धति थी। मुस्लिमों के भारतागमन के उपरान्त पत्तों पर लिखने की पद्धति बंद हुई और कागजों पर लिखने का कार्यारंभ हुआ। कई ग्रन्थों में चित्र भी बनाये गये हैं। मुडुबिद्रे के हस्तप्रति ग्रंथालय में उपलब्ध 12 वीं शति के धवळ, महा धवळ, जय धवळ आदि ग्रन्थों की भाषा प्राकृत है, मगर लिपि कन्नड़ की है। इन ग्रन्थों की रचना गेरुसोप्पे नामक स्थान पर हुई है। पत्तोंदार पन्नों के किनारों पर चित्रांकन कार्य हुआ है और मद्य भाग में

विषयाभिव्यक्ति हुई है। विशेषतः इन में जैनतीर्थंकरों, आचार्यों और उनके शिष्यों तथा यक्ष-यक्षिणियों के चित्र हैं।

डॉ. शिवराम कारंत जी के अनुसार उत्तर कर्नाटक में, सन् 1668 में रचित महाभारत के सभापर्व में लघु चित्र विद्यमान है। यह कृति नागरी लिपी में है। इसी तरह और एक उद्धरणेय वचनगळु नामक ग्रन्थ के पन्नों पर भी लघु चित्र हैं।

मुम्मडी कृष्णराज ओडेयर के नाम पर रचित एक ग्रन्थ में चित्रों की भरमार है। इस ग्रन्थ में श्री तत्व निधि, शक्ति तत्व निधि, विष्णु तत्व निधि, शैव तत्व निधि ब्रह्म तत्व निधि, ग्रह तत्व निधि, वैष्णव तत्व निधि आगम तत्वनिधि, कौतुक निधि नामक नौ अध्याय हैं। इस कागज के ग्रंथ में संस्कृत के अनेक श्लोक लिखे गये हैं। हर एक पृष्ट पर सुन्दर चित्र अंकित हैं।

इसी समय के वृषभेन्द्र विलास शीर्षक ग्रंथ के प्रत्येक पृष्ठ पर चित्र हैं। यह ग्रन्थ बसवेश्वर की कथा को आधार बनाकर यज्ञगान ग्रन्थ के रूप में लिखा गया है। कहा जाता है कि ऐसे सचित्र ग्रन्थ अनेक हैं। इस संबंध में सोधकार्य करना आवश्यक हैं।

पुराने जमाने में लकडी या चमडे से बनाई हुई कठपुतली गुडियों का खेल अत्यंत लोकप्रिय था। यह खेल किळ्ळेकेतों के जीविकोपार्जन का आधार भी था। हिरनों या बछड़ों के चमडे को पारदर्शक व चमकीले बनाकर महाभारत, रामायण या पुराणादि में आनेवाले पात्रों की गुडियों को तैय्यार करते थे। ऐसी तैय्यार की गयी गुडियों को बाँस के डंडों के सहारे बांधकर नृत्य या अभिनय कराते थे। इस खेल के लिए गीत संगीत व संवादों का भी उपयोग भी होता रहा। लकडीया चमडे की ऐसी गुडियों के चित्रों को चित्रकलाकार आकर्षित एवं कलात्मक बनाते थे।

इस तरह कर्नाटक संस्कृति की उन्नति को हम समृद्ध शिल्पकला एवं चित्रकला के द्वारा समझ सकते हैं।

भारत में कर्नाटक अनेक कालाओं को प्रोत्साहित करनेवाला प्रमुख केन्द्र है। संस्कृति के प्रारम्भ से लेकर मैसूर के ओडेयर के शासनकाल तक चालुक्यों, गंगों, राष्ट्रकूटों होय् सळों तथा विजयनगर के नरेशों ने वास्तुकला, मूर्तिकला, तथा चित्रकला को समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण प्रोत्साहन दिया है। अतएव अजंता, एल्लोरा, बादामी, पट्टदकल्लु, बेलूरु, हळेबीडु तथा हंपे आदि में अद्भुत कलाकृतियों को देख सकते हैं। कर्नाटक के सांस्कृतिक वैभव का यश भारत देश में ही नहीं बल्कि विश्व में फैल गया है।

*****

कर्नाटक के धार्मिक और दर्शनीय स्थान

कर्नाटक के इतिहास में हम्पी नगर का महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि सोलहवीं शतब्दी के प्रारंभ में हम्पी को ही केन्द्र बनाकर विश्वविख्यात विजयनगर साम्राज्य कि स्थापना हुई जिसका बोलबाला सारे दक्षिण-भारत में व्याप्त हुआ और जिसके राजाओं ने संगीत, नृत्य, साहित्य, शिल्पादि कलाओं को प्रोत्साहन देकर स्थान-स्थान पर भव्य मन्दिरों और महलों के निर्माण तथा पुनरुद्धारण के द्वारा कर्नाटक के कलापूर्ण वैभव को उद्घोषित किया। विजयनगर के राज्यकाल में कलाप्रिय अनेक विदेशियों का आगमन भी हुआ जिन्होंने विजयनगर काल के मन्दिरों और वास्तुशिल्पों की खूब प्रशंसा की है। विजयनगर साम्राज्य की राजधानी हम्पी के विरुपाक्षेश्वर स्वामी का दिव्य मन्दिर अपने ऐतिहासिक महत्व के कारण हर साल लाखों पर्यटकों को आकर्षित करता है।

विरूपाक्ष मंदिर का सविस्तार वर्णन

यह पुरातन मन्दिर जो पंपापति मन्दिर के नाम से भी प्रसिद्ध है, आज ग्रामीण वातावरण के बीच गंभीर सौन्दर्य के साथ भक्तजनों को आह्वानित करता रहता है। इस सुन्दर मन्दिर के ऊँचा गोपुर शहर के चारों ओर बहुत दूर से ही ऐसा दिखायी देता है मानों वह गगन को चूमकर अपनी कला संपत्तति को उस परमात्मा को ही अर्पित कर रहा हो। विरूपाक्ष का यह मन्दिर विजयनगर साम्राज्य की स्थापना के बहुत पहले ही प्राचीन काल से ही विद्यमान है और इतिहासज्ञों का कहना है कि चालुक्य, होयसल आदि राजवंशों ने भी इस दिव्य महान् मन्दिर के कलापूर्ण निर्माण में योगदान दिया। विजयनगर के राजाओं ने तो समय समय पर विरुपाक्ष मन्दिर के पुनरुद्धारण तथा अनेक शिल्पाकृतियों से उसके अलंकरण के कार्यों में सहयोग देते ही रहे। विजयनगर राजाओं के शासन काल में तो भारतीय वास्तुकला नये रूप में विकसित होने लगी

और विपुल संपत्ति का अनुदान देकर हिन्दू धर्म के संरक्षक, विजयनगर के शासकों ने अनेक भव्य देवालयों को निर्मित करके धर्म प्रचार के साथ कलाकारों को भी प्रोत्साहित किया। विजयनगर के सुविख्यात राजा कृष्णदेवराय ने विरुपाक्ष देवालय के द्वार के ऊपर अति सुन्दर गोपुर बनवाया जो कर्नाटक के वास्तुशिल्पियों की कर-कुशलता का अत्यद्‌भुत प्रतीक कहा जा सकता है। कहा जाता है कि सन् 1510 में जब कृष्णदेवराय को राज्याधिकार प्राप्त हुआ तब अपने राज्याभिषेक की स्मृति में उसने यह गोपुर भी बनवाकर उसी मंदिर में एक सुन्दर रंगमंडप का भी निर्माण किया।

मंदिर का वर्णन

शिल्पालंकृत इस राजगोपुर के मन्दिर में प्रवेश करते ही और एक गोपुरद्वार को पार करना पडता है। वहाँ एक ध्वजस्तंभ और मंडप के दर्शन होते हैं। गर्भगृह के चारों ओर विशाल प्राकार और सुन्दर मंडप हैं। मंदिर के उत्तर की ओर एक दर्शनीय गोपुर है जिसे कन्नगिरि गोपुर कहलाता हैं। क्योंकि कन्नगिरि नामक एक अधिकारी ने इस गोपुर को बनवाया। गर्भगृह के सामने एक सुन्दर कल्याण मंडप जिसका हर एक स्तंभ कर्नाटक के शिल्पियों के कुशल कारीगरी से अत्यंत आकर्षक दीखता है। गर्भगृह के ठीक सामने एक छोटे से चतुरस्र मंडप में पीतल का नन्दी (वृषभ) स्थापित है जो आज भी नया-सा दिखायी देता है। इस चतुरस्र मंडप के स्तंभ तो होयसल की शिल्पकला की याद दिलाते हैं। गर्भगृह के अंदर विरूपाक्षस्वामी स्वयंभू लिंग के रूप में विराजमान है। विरूपाक्षस्वामी को पंपापती भी कहते हैं। विजयनगर के शासक “पंपापती” को अपने कुलदेव के रूप में पूजा-आराधना किया करते थे। कहा जाता है कि हंपी के पास बहनेवाली तुंगभद्रा नदी ही रामायण में उल्लिखित पंपासरस् है अतः पंपासरस् के तट

पर निर्मित शहर भी पंपा या हंपे के नाम से प्रसिद्ध हुआ। स्कांद पुराण में इस पंपाक्षेत्र से संबंधित एक कथा भी पायी जाती है।

इसी मन्दिर में मुक्ति नरसिंह, श्री सूर्यनारायण मूर्ति गणपति, श्री गुरु कुञ्ज माधव स्वामी, देवी महिषासुर मर्दिनी आदि आवरण देवताओं के लिए भी पूजागृह हैं। इस मन्दिर की एक अद्भुत विशेषता यह है कि विरूपाक्ष के गर्भगृह के पीछे वायुव्य दिशा में एक छोटा छेद बनाया गया है जिसके द्वारा सूरज की किरणें सामने की दीवार पर पडती हैं और ध्यान से देखा जाय तो बाहर के राजगोपुर की उलटी छाया उसमें प्रतिबिंबित होती हैं। कहते हैं कि यह छाया दिन भर देखी जा सकती है। भारत के प्राचीन शिल्पकारों के कला-सामर्थ्य का यह एक अच्छा अद्भुत नमूना है। इस मन्दिर के बायीं ओर प्राकार में लोकमाता भुवनेश्वरी का मन्दिर है। हम ऐसा कह सकते है कि इस मन्दिर का प्रवेशद्वार तो कला का ही खजाना है...!! प्राचीन काल के उन अज्ञात शिल्पियों ने कलारूपिणी माता भुवनेश्वरी के मन्दिर को इतने कलापूर्ण शिल्पी से सजाया है कि दर्शक आनन्द विभोर हो उठते हैं। कृष्णशिला में निर्मित देवी के इस मन्दिर में हज़ारों छेदवाले वातायन भी बनाये गये हैं जिनमें सूक्ष्म नक्काशीदार शिल्प विनोद देखने को मिलते हैं। द्वारा की देहरी पर तो क्रमपूर्वक राम-रावण युद्ध की घटनाओं को पत्थर पर साकार बना दिया गया है। जिसने निर्जीव पत्थर पर यह अद्भुत सृष्टि की थी उस अज्ञात शिल्पी को याद करके दर्शक मन ही मन भाव-विभोर होकर उसके प्रति नतमस्तक हो जाते है।

हिन्दूधर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए विजयनगर के सम्राट अपने प्राणों का भी बलिदान करने के लिए तैयार थे। इन पर माता भुवनेश्वरी का संपूर्ण अनुग्रह था, दक्षिण भारत में 250 वर्षों तक विजयनगर साम्राज्य का बोलबाला था और कहते है कि देवी भुवनेश्वरी ही विजयनगर साम्राज्य की लक्ष्मी बनकर सब पर कृपा-वृष्टि कर रही थी....!

आज भी कर्नाटक की अधिष्ठात्री देवी के रूप में भुवनेश्वरी की आराधना होती रहती है।

लोगों का अटूट विश्वास है कि विजयनगर साम्राज्य की स्थपना भी देवी भुवनेश्वरी की कृपा से ही हुई। पंपाक्षेत्र के निवासी महान् ज्ञानी श्री विद्यारण्य दीर्घकाल तक भुवनेश्वरी देवी की उपासना करते रहे जिसके फलस्वरूप वे अनेक अद्भुत शक्तियों से संपन्न हुए। ऐसा कहा जाता है कि कनकधारा स्तोत्र के गान से जिस प्रकार शंकराचार्य के सामने सुवर्णवृष्टि हुई उसी प्रकार ही महात्मा विद्यारण्य के सामने भी भुवनेश्वरी की कृपा से सुवर्णमुद्राओं की वृष्टि हुई और इस विपुल धनराशि की सहायता से उन्होंने विजयनगर साम्राज्य की सदृढ़ नीव डाली। विरूपाक्षस्वामी के मंदिर के पीछे इस महान व्यक्ति का अधिष्ठान और मठ है जिनके द्वारा अनेक धार्मिक कार्य संपन्न होते रहते है।

हंपी नगर के आस पास के मंदिर

हम्पी के निकट श्री कोदण्डस्वामी और यंत्रोद्धारक आंजनेय/हनुमान स्वामी के मन्दिरों में आज भी पूजा की व्यवस्था की गयी है। हम्पी शहर से कुछ दूरी पर मातंग पर्वत का दर्शन होता है और कहा जाता है कि इस पहाड पर मतंगमुनि का आश्रम भी है। रामायण काल में जब वाली ने सुग्रीव को राज्य से बहिष्कृत किया तब सुग्रीव इसी पर्वत पर आश्रय लेकर रहने लगा।

हम्पी के सभी मन्दिरों में विजय विट्ठल मन्दिर अत्यंत मशहूर है। इस मन्दिर तक पहुँचने के पहले रास्ते में और दो पुरातन मन्दिर, एक लक्ष्मीनारायण का और दूसरा विष्णु के मंदिर दृष्टिगोचर होते है, परन्तु दोनों से शिथिल हो गये हैं और दोनों मंदिरों में पूजा की व्यवस्था नहीं है। विट्ठल मन्दिर के बारे में कहा जाता है कि इसके निर्माण में दीर्घ समय लगा और कृष्णदेवराय के शासन-काल में इसका निर्माण-कार्य प्रारंभ हुआ जो

अच्युतराय और सदाशिवराय के समय में चालू रहा। परन्तु तालिकोटे की लडाई के परिणाम स्वरूप विजयनगर की राजधानी शत्रुओं से लूट ली गयी जिसके फलस्वरूप विट्ठल स्वामी के अति सुन्दर मन्दिर का निर्माणकार्य अपूर्ण ही रह गया। कहते हैं कि इस मन्दिर का निर्माणकार्य अपूर्ण ही रह गया। कहते हैं कि इस मन्दिर में विट्ठल मूर्ति की स्थापना ही नहीं हुई। काल गर्भ प्रकोप एक कथा प्रचलित है कि पंढरीपुर के देवता श्री विट्ठल (पांडुरंग) के लिए ऐसा भी कहते हैं कि महाराजा कृष्णदेवराय ने यह मन्दिर बनवाया किन्तु भगवान् विट्ठल अपने स्थान को छोड़कर हम्पी जाने के लिए तैयार नहीं थे। जो भी हो भगवान के लिए बनाया हुआ यह पवित्र मन्दिर आज विविध प्रकार की शिल्पकलाओं के नमूनों से अलंकृत होकर कलादेवी के एक विशाल क्रीडांगण के रूप में लाखों कलाप्रेमियों को आकर्षित कर रहा है। विट्ठलस्वामी देवालय के प्रधान मंडप और कल्याण मंडप तो अतीव सुन्दर हैं। इसके प्रकार में पत्थर का रथ है जो कर्नाटक के शिल्पियों की हस्तकुशलता की प्रत्यक्ष दर्शन है। इस मन्दिर के हर स्तंभ पर, हर द्वार पर, हर भित्ती पर विजयनगर काल की शिल्पकला की परमोन्नति को देख सकते हैं। हर भित्ती के निचले भागों में अश्व, हंस, गज आदि मृगपक्षियों की छोटी-छोटी शिल्पाकृतियाँ, सीढियों के दोनों ओर गजाकृतियाँ, विविध आकार के स्तंभ, सप्तस्वर के स्तंभ, प्राकारों की भित्तियों पर अंकित रामायण की कथाएँ, पत्थर से बनी श्रृंखलाएँ इत्यादि को देखते-देखते दर्शक ऐसा अनुभव करने लगता है कि वह कला के एक विचित्र लोक में आ गया हैं...!!

हम्पी के अन्य दर्शनीय देवालयों में श्री कोदण्डराम का मन्दिर भी एक है। इस अति पुरातन मन्दिर में श्री कोदण्डराम और लक्ष्मण की दीर्घ मूर्तियाँ स्थापित हैं और पास ही अत्यंत विनयपूर्ण मुद्र में सुग्रीव की मूर्ति भी है। हम्पी का यन्त्रोद्धारक आंजनेय/हनुमान का मन्दिर भी सुप्रसिद्ध है। कहा जाता है कि श्री मध्व सिद्धान्त के प्रचारक एवं परम भक्त श्री

व्यासतीर्थ ने देशभर में आंजनेय के लिए 750 मन्दिर बनवाने का व्रत ठान कर सर्वप्रथम हम्पी में यन्त्रोद्धारक आंजनेय का प्रतिष्ठापन किया। अतः यह मन्दिर लाखों भक्तों को आकर्षित करता है।

हम्पी शहर के मन्दिर तो कर्नाटक के अतीत वैभव से मुखरित है। इस वैभव को शाश्वत रखना हर नागरिक का कर्तव्य होता है।

उडुपी के मन्दिर

कर्नाटक के धार्मिक नक्शे में कृष्णभक्ति के प्रमुख केन्द्र के रूप में उडुपी शहर अंकित हुआ है। कर्नाटक के पश्चिमी समुद्र तटीय प्रदेश तो अनेक मन्दिरों और मठों से अलंकृत हुआ है जिनमें से उडुपी क्षेत्र में निर्मित श्री बालकृष्ण का भव्य मन्दिर लाखों भक्तों को आकर्षित करता है और वैष्णव भक्त हरिदासों का प्रमुख केन्द्र बनकर हरिनाम-संकीर्तन से सदा गूँजता रहता है। कर्नाटक का समुद्रतटीय प्रदेश पुराणों में उल्लिखित परम पवित्र परशुराम क्षेत्र का एक भाग माना जाता है। पौराणिक कथा प्रचलित है कि भगवान् विष्णु ने अपने परशुराम के अवतार काल में इक्कीस बार क्षत्रियों पर आक्रमण करके एक महान् यज्ञ को सफलतापूर्वक संपन्न किया। इस अवसर पर उन्होंने अपनी सारी ज़मीन दान में दे दी और अपने लिए रहने का कोई स्थान न पाकर समुद्र के देवता वरुण से प्रार्थना करके अरब समुद्र से कुछ ज़मीन उद्घृत करके रहने लगे। समुद्र से उद्धत यह स्थल जो गोकर्ण से कुमारीद्वीप तक फैला हुआ था, यही क्षेत्र ''परशुराम क्षेत्र'' नाम से विख्यात हुआ। उस प्राचीन काल से ही इस भूमि पर अनेक याग-यज्ञादि पुण्यकार्यों के संपन्न होने के कारण यह अत्यंत पवित्र हो उठा और लाखों तपस्वियों, साधु-संतों और भक्त जनों का निवासस्थान भी बन गया।

कहा जाता है कि एक बार भगवान् परशुराम का बड़ा भक्त राजा रामभोज अश्वमेध-याग करने के उद्देश्य से ज़मीन जोतने लगा तब हल

चलाते समय एक नागसर्प की हत्या हो गयी। इस घोर पाप के प्रायश्चित के रूप में भगवान् परशुराम के आदेशानुसार रामभोज ने एक विशाल रजतवेदिका बनाकर उसके चारों कोनों में नाग की प्रतिमाओं को प्रतिष्ठापित करके उनकी पूजा करने लगा। नागहत्या के पाप से विमुक्त होने के लिए उसने सोने से अपना ही तुलाभार करके सोने को गरीबों में बाँट दिया। अपने भक्त रामभोज से संतुष्ट होकर भगवान् परशुराम ने स्वप्न में उसको दर्शन देकर कहा कि जिस स्थान में वह महान् यज्ञ संपन्न हुआ वह रजत या रूप्य पीठ के नाम से प्रसिद्ध होकर तीर्थस्थान बनेगा और यही रूप्यपीठ आज 'उडुपी' नाम से प्रसिद्ध हुआ हैं जिसमें द्वैतमत के प्रवर्तक श्री मध्वाचार्य द्वारा स्थापित बाल नवनीत कृष्ण की सुन्दर मूर्ति देश-विदेशों के चारों ओर से भक्तजनों को आकर्षित कर रही है। उडुपी क्षेत्र के आस-पास का प्रदेश तोलवदेश भी कहलाता है क्यों कि यहाँ राजा रामभोज ने सुवर्ण-तुलाभार करके यश प्राप्त किया।

कृष्णावतार के अंत में अर्जुन ने इस दिव्य मूर्ति को द्वारका के एक बगीचे में छिपाकर रखा और कृष्ण की वही महिमामयी मूर्ति परम कृष्णभक्त मध्वाचार्य के द्वारा उडुपी में प्रतिष्ठापित होकर इस कलियुग में भी भक्तों पर कृपावृष्टि कर रही है।

उडुपी के इस कृष्ण मन्दिर का गर्भगृह छोटा ही है और इसका द्वार भी बन्द ही रहता है। इस मन्दिर की विशेषता यह है कि श्रीकृष्ण के दिव्य दर्शन की प्राप्ति नवद्वारवाली एक खिडकी से ही हो सकती है। वैष्णव भक्तों का विश्वास है कि जब परम भक्त कनकदास को मन्दिर में प्रवेश न मिलाता तब उनकी अनन्य भक्ति के वशीभूत होकर श्रीकृष्ण ने ही स्वयं बायीं तरफ मुड़कर उस खिड़की के द्वारा कनकदास को अपने दिव्य दर्शन से अनुगृहीत किया। जिस खिड़की से भगवान् के दर्शन प्राप्त होते है उस में नौ द्वार हैं जो नवग्रह कहलाते हैं। नवग्रह खिड़की की चौखट और उसके चारों ओर की दीवार चाँदी के परतों से ढकी हुई हैं जिनपर महाविष्णु के

विविध अवतारों के चित्रों के साथ श्रीदेवी, भूदेवी, हनुमान की मूर्ति, गरुड, गजलक्ष्मी, हँस पक्षी, याळी आदि भी अंकित हुए हैं। नवग्रह खिडकी के ऊपरी भाग में अंकित विष्णु के अनन्तशयन का चित्र तो अतीव सुन्दर व आकर्षक है। गर्भगृह के मंडप के विमान भी दशावतार के शिल्प से अलंकृत हैं। नवग्रह खिडकी के दोनों ओर द्वारपालकों की मूर्तियाँ स्थापितत हुई हैं। इस मंदिर के पश्चिमी प्राकार में 'चन्द्रशाला' नामक एक मंडप है जिसकी दीवार अनेक पौराणिक चित्रों से शोभित है। इसी मंडप के बीच में एक खिडकी है जिसके द्वारा बाहर के लोग भी श्री कृष्ण के दर्शन पाकर आनन्दविभोर हो जाते हैं। इस खिडकी को 'कनकन - किण्डी' कहते हैं क्यों कि भक्तप्रवर कनकदास इसी खिडकी से भगवान् कृष्ण के दर्शन पाकर कृतकृत्य हुए। इसी मंडप के दोनों ओर गरुड़ और मुख्य प्राणदेव श्री हनुमान के पूजा-गृह भी हैं। चन्द्रशाला मंडप के पास गर्भगृह के सामने एक चतुरस्र मंडप है जिसके चारों स्तंभों पर लक्ष्मीवराहमूर्ति भूवराहमूर्ति, कालियमर्दन कृष्ण, श्री विट्ठल, वेदव्यास, श्री मध्व, गणपति, श्रीराम, लक्ष्मी- नरसिंह इत्यादि देवताओं की सुन्दर शिल्पा-कृतियाँ दर्शनीय हैं।

उडुपी के कृष्णमठ में एक सुन्दर तालाब भी है जिसके बीच में एक सुन्दर मण्डप भी निर्मित है। इस तालाब के स्वच्छ निर्मल जल से ही प्रतिदिन श्री कृष्ण का अभिषेक होता है। कहा जाता है कि यह सरोवर बहुत प्राचीन है और कृतयुग में विराजतीर्थ, त्रेता और द्वापर युगों में अनन्तसरोवर तथा कलियुग में मध्वसरोवर के नाम से विख्यात हुआ है। इसी पवित्र सरोवर में हर साल श्री बालकृष्ण का जलोत्सव भी मनाया जाता है। श्री कृष्ण के गर्भगृह के पृष्ठभाग में चेन्नकेशवस्वामी की दिव्य मूर्ति है जो अपने चारों हस्तों में कमलपुष्प, शंख, चक्र और गदा को धारण करके विराजमान है। महान् भक्त कनकदास को भगवान् विष्णु ने इसी रूप में दर्शन प्रदान किया। इस मूर्ति के दोनों ओर सुन्दर द्वारपालकों की मूर्तियाँ भी स्थापित हुई हैं।

श्री कृष्ण मन्दिर के मुखमंडप के उत्तर में पीतल के कवच से आवृत तुलसी का बृन्दावन है जिसकी पूजा विशेष रूप से कार्तिक महीने में मनायी जाती है। इसके पास ही एक अति सुन्दर दीप-स्तंभ है। पास ही श्री हनुमान स्वामी के लिए पूजागृह भी है। श्री कृष्ण के गर्भगृह के उत्तरी ओर एक प्रवेश द्वार है जहाँ सिर्फ मठाधिपति और अर्चक ही प्रवेश कर सकते हैं। इस द्वार के बाहर भी द्वारपालकों की मुर्तियाँ हैं और ऊपर श्री नवनीत कृष्ण का शिल्प अंकित है। इस द्वार से प्रवेश पाते ही दक्षिण की ओर श्री मध्वाचार्य की सुन्दर मूर्ति दिखायी देती है जिसका प्रतिष्ठापन श्री वादिराज स्वामी के करकमलों से हुआ।

श्री मध्वाचार्य ने अष्टमठों की स्थापना करके हर एक मठ को अपने द्वारा पूजित विष्णु की मूर्ति प्रदान करके उसकी पूजा-आराधना की व्यवस्था भी की। आज भी इन आठों मठों में कणियूर, पुत्तिगे, सोदे, अद्मार, पालिमार, पेजावर, कृष्णापुर, सिरूर-इन मठों में विधिपूर्वक बड़ी श्रद्धा और भक्ति से इन दिव्यमूर्तियों की पूजा होती है।

इस मन्दिर में सुबह पाँच बजे से रात दस बजे तक श्री कृष्ण की विविध प्रकार की पूजाएँ की जाती है। प्रातः विश्वरूप पूजा के बाद उषत् काल की पूजा, गो पूजा, पञ्चामृत पूजा, उद्धार्धन पूजा, अलंकार पूजा इत्यादि पूजाएँ पर्याय मठाधीश के द्वारा संपन्न होती हैं और लाखों भक्त हर पूजा के समय विविध प्रकार से अलंकृत श्रीकृष्ण की बालछवि पर भाव-विभोर तथा निछावर हो जाते हैं। हर पूजा के अंत में धूप-दीप आदि के साथ तरह-तरह के मिष्ठान्न भोग भी चढ़ाये जाते हैं और प्रसाद के रूप में बाँटे जाते हैं। कृष्ण दर्शन के लिए हजारों की संख्या में जितने भी लोग यहाँ आते हैं उन सब को स्वादिष्ट भोजन भरपेट खिलाने की परिपाटी श्री मध्वाचार्य के काल से ही यहाँ प्रचलित है। इसलिए इस मन्दिर में स्थित करुणासागर, भक्त-वत्सल श्री कृष्ण को अन्नब्रह्म कहते हैं। पंढरपुर का श्री विट्ठल तो नादब्रह्म है और तिरुपति का वेंकटेश्वर कनकब्रह्म।

उडुपी के इस कृष्ण मन्दिर के समीप ही दक्षिण की ओर श्री चन्द्रमौलीश्वर का एक पुरातन मन्दिर है। कहा जाता है कि इसी स्थल पर चन्द्र ने अपने शाप से मुक्त होने के लिए शिव के ध्यान में तपस्या की। कहा जाता है कि चन्द्रमौलीश्वर का स्वयंभू लिंग प्रातः- काल में काला, मध्याह्न में नीला और रात में सफेद दिखायी देता है। यह मन्दिर तीन प्राकारों से युक्त अतीव सुन्दर है और इसके दूसरे प्राकार में विघ्नेश्वर का भी एक पूजागृह है। चन्द्रमौलीश्वर मन्दिर की पश्चिमी ओर श्री अनन्तेश्वर का एक मन्दिर है। कहा जाता है कि अनन्तपद्मनाभ ही स्वयंभू लिंग के रूप में इस पवित्र स्थल में विराजमान हैं और अनन्तेश्वर या अनन्तासन के नाम से भक्तजनों के आराध्य बन गये हैं। मन्दिर के सामने करीब चालीस फुट का एक दीपस्तंभ और कमलपुष्प के आकार में एक पीठ भी है। मन्दिर में छः स्तंभवाला काले पत्थर का एक भव्य मण्डप है और कहा जाता है कि इसी मंडप में श्री मध्वाचार्य अपनी बाल्यावस्था में अध्ययन किया करते थे और बाद में अपने शिष्यों को द्वैत सिद्धान्त का उपदेश भी दिया करते थे। भक्तों का विश्वास है कि आज भी यहाँ श्री मध्वाचार्य अपने सूक्ष्म शरीर से विद्यमान हैं और कृष्णमठ के अधिपति की ओर से इस स्थल में उनकी विशेष पूजा आदि की जाती है।

उडुपी के पश्चिम में मलपे समुद्र-तट अत्यंत रमणीय तथा मनमोहक हैं। इसके निकट वडभाण्डेश्वर नामक एक सुरम्य ग्राम में एक छोटे से भव्य मन्दिर में श्री बलराम की दिव्य मूर्ति प्रतिष्ठापित हुई है। गर्भगृह में बलराम की मूलमूर्ति के पास मयूरारुढ़ श्री षण्मुख सुब्रह्मण्य की उत्सवमूर्ति भी रखी गयी है और हर साल इसी मूर्ति के विशेष उत्सव मनाये जाते हैं। इस मन्दिर के विमान पर उग्र नरसिंहमूर्ति, श्री महाविष्णु, परमशिव, चतुर्मुख ब्रह्मा आदि देवताओं की प्रतिमाएँ अंकित हुई हैं। उडुपी के निकट 'अम्बलपाडी' नामक गाँव में चतुर्भुजों से युक्त जनार्दन स्वामी

का मन्दिर है और इसी मन्दिर में दुर्गादेवी का गर्भगृह है। शंख, चक्र, खड्ग और कलश से युक्त यह मूर्ति काष्ठ की है और बहुत ही सुन्दर और सजीव है।

उडुपी का कृष्णमठ वेदान्त का भी एक प्रधान विद्याकेन्द्र है और कृष्ण भक्ति का उद्गमा स्थान है। इस पवित्रस्थल से उमड़नेवाली विमल भक्ति की मन्दाकिनी न केवल कर्नाटक को अपितु सारे भारत को आप्लावित करती हुई निरन्तर प्रवाहित हो रही है।

कोल्लूरू मूकाम्बिका का मन्दिर

दक्षिण कन्नड़ जिले के उत्तर में समुद्र-तट से करीब पन्द्रह मील की दूरी पर हरे-भरे ऊँचे-ऊँचे पर्वतों से आवृत घने जगलों के बीच एक अति सुन्दर मन्दिर निर्मित है जिसमें जगत् की सृष्टि-कर्त्री आदिपराशक्ति मूकाम्बिका के रूप में विराजमान होकर भक्तजनों पर कृपा वृष्टि कर रही है। साक्षात् जगज्जननी का निवासस्थान होने के कारण आस-पास की प्राकृतिक शोभा अत्यंत सुहावनी, सुरम्य गाँव के निवासी अत्यंत सीधे-सादे, पशु- पक्षी भी अत्यंत स्नेहशील, पेड़-पौधे फूलों से लदे, सरित्-तडाग अमृततुल्य जल से भरपूर-इस तरह यहाँ आते ही पर्यटक-भक्तों को ऐसा लगता है कि वे एक अनोखे स्थान पर आगये हैं।

कोल्लूरु नामक सुरम्य गाँव में स्थित यह मन्दिर शक्तिपीठ कहा जाता है। वैसे तो कर्नाटक के सात मुक्तिक्षेत्रों में से कोल्लूर भी एक माना जाता है। उडुपी सुब्रह्मण्य, कुम्भकाशी, कोटेश्वर, क्रोड शंकरनारायण और गोकर्ण, इन छः अन्य मुक्ति –क्षेत्रौं की यात्रा करके धर्मालु व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करने की आशा करते हैं। कोल्लूरु गाँव को मूकाम्बापुरी भी कहते हैं। भक्तों का विश्वास है कि कोल महर्षि की प्रार्थना पर आदिशक्ति माता ने ईश्वर के साथ लिंग-रूप में आविर्भूत होकर मूक नामक असुर का वध किया। इसी कारण से यह पवित्र स्थल 'कोलापुर' कहलाने लगा जो आगे चलकर 'कोल्लूरु' नाम से प्रसिद्ध हुआ। भक्तों का दृढ़ विश्वास है कि यहाँ साक्षात्

दुर्गा ही देवी के रूप में विराजमान है, अतः वैष्णव भक्त भी इस देवी के आराधक होते हैं। भक्तवृन्द में ऐसा विश्वास है कि महाकालीदेवी, महालक्ष्मी और महासरस्वती, ये तीनों शक्तियाँ श्री मूकाम्बिका के रूप में आविर्भूत हुई हैं, अतः इस पुण्य स्थल में देवी के दर्शन करने से सब प्रकार के कलुषों से मानव मुक्त हो जाता है।

कोल्लूरु स्थल की महिमा 'स्कान्द पुराण' में वर्णित है। यहाँ के स्वयंभूलिंग में "श्रीचक्र" के रूप में परब्रह्मस्वरूपिणी पराशक्ति सभी देवताओं के साथ आविर्भूत हुई है। भगवान् शिव ने अपने पुत्र सुब्रह्मण्य को इसका विवरण सुनाया और सुब्रह्मण्य भी पराशक्ति की आराधना करने के लिए इस पवित्र स्थल में आ गये। करोड़ों भक्त हर साल देवी के दर्शन के लिए आते हैं।

इस मंदिर के गर्भगृह में शिवलिंग के पीछे देवी मूकाम्बिका की अति सुन्दर पँचधातु की प्रतिमा देवी के अनन्य उपासक श्री शंकराचार्य के कर-कमलों से प्रतिष्ठपित हुई है। पद्मासन में आसीन मूकाम्बिका ऊपर के दो हाथों में शंख व चक्र धारण की है और अन्य दो हस्त अभय और वरद मुद्राओं में सुशोभित हैं। सुवर्ण कवच धारण करके नवरत्नों के बहुमूल्य आभूषणों से अलंकृत होकर मंगलमयी मंगलदात्री देवी तेजोमय होकर विराजित है। दर्शकों को ऐसा लगता है कि यह धातु की प्रतिमा नहीं बल्कि साक्षात् दिव्यकान्तियुक्त देवी ही वहाँ आसीन है। देवी के करुणा-कटाक्ष में भक्त-गण अपने को भूल जाते हैं। देवी की प्रतिमा के आगे जो शिव-लिंग प्रतिष्ठापित हुई है वह शिव और शक्ति के समन्वित रूप है और उसके मध्य भाग में एक सुवर्ण-रेखा भी दिखायी देती है जो सूचित करती है कि यह लिंग दो पारमार्थिक तत्त्वों का समन्वित रूप है। गर्भगृह में ही मूकाम्बिका की प्रतिमा के पास पँचधातु से बनी महाकाली और महासरस्वती की उत्सवमूर्तियाँ भी दर्शनीय हैं।

कहा जाता है कि जब यह महान् तपस्वी इस पुण्य स्थल कोल्लूर में प्रवेश कर रहे थे तब उन्होंने एक वयोवृद्ध दंपती को अपने मृत पुत्र के लिए रोते हुए देखा और उस पुण्यक्षेत्र की महिमा से शंकराचार्य ने उस मृत बालक को अपनी भक्ति के बल से जगा दिया। उसी क्षण उनको महसूस होने लगा कि घने जंगल में स्थित उस जगह में देवी की मंत्रशक्ति सर्वत्र व्याप्त है। मूकांबिका देवी ने शंकराचार्य, को अपने दर्शन से अनुगृहीत भी किया और 'कलारोहण' नामक स्तोत्र से देवी को संतुष्ट करके वे उसकी संपूर्ण कृपा के पात्र हुए। ऐसा भी कहा जाता है कि उन दिनों देवी मूकाम्बिका अति उग्र थी और लोग उसके क्रोध को कम करने के लिए बलि चढ़ाया करते थे। जब तंत्रयोगीश्वर और महान् भक्त श्री शंकराचार्य वहाँ आये तब उन्होंने देवी के आगे श्रीचक्र का प्रतिष्ठापन करके देवी के उग्र कोप को शांत करके उसको शांतस्वरूपिणी बनाया और उस मन्दिर में देवी की दैनिक पूजाओं के क्रम को आयोजित भी किया।

जो मंत्र-तंत्रादि विद्याओं में पारंगत होना चाहते हैं जो अद्भुत शक्तियों से संपन्न होना चाहते हैं वे इस मन्दिर के शंकर-सिंहासन के पास ध्यान-मग्न होकर बैठ जाते हैं। चित्र, शिल्प, संगीत, नृत्य आदि कलाओं में निपुणता पाने की इच्छा से बहुत से कलाकार देवी मूकांबिका के चरणकमलों के पाठ बैठकर प्रार्थना करते हैं और कलाओं की अधिष्ठात्री देवी से अनुगृहीत होते हैं। मन्दिर के प्राच्य प्राकार में श्री वीरभद्र के लिए एक गर्भगृह है। कहा जाता है कि शंकर-सिंहासन के कमरे से यहाँ तक एक सुरंग है जिसमें एक काला नागसर्प रहता है और साल में एक बार वह एक छेद के द्वारा बाहर प्रकट होकर फिर अदृश्य हो जाता है।

कोल्लूर के इस मन्दिर की विशेषता यह है कि यहाँ पँचधातुओं से और काले पत्थर से बनी कई सुन्दर मूर्तियाँ संगृहीत हैं जो शिल्पकला के अति भव्य नमूने मानी जाती हैं। सिद्धि देवी के साथ गणपति, तीन मुख और दस हस्तों के साथ सर्प पर पाँव रखकर स्थित विनायक की मूर्ति, नूतन

आसन लगाकर बैठे श्री हयग्रीव की मूर्ति-इस तरह कुछ अपूर्व, अन्यत्र दुर्लभ मूर्तियाँ इस मन्दिर में उपलब्ध हैं जो कर्नाटक के कलाकारों की हस्तकुशलता को प्रकट करती हैं। ये सब तो कर्नाटक के अपूर्व और अनमोल कला-संपत्तियों के उत्तम नमूने है। यहाँ एक ही शिला में उत्कीर्ण पँचमुख गणपति की भी एक सुन्दर मूर्ति पायी जाती है जिसके बारे में कहा जाता है कि वह स्वयंभू मूर्ति है और सौपर्णिका नदी में उपलब्ध हुई।

जो भी पर्यकट कोल्लूरु जाते हैं वे एक ओर वहाँ की प्रकृति माता के स्निग्ध स्नेहांचल की सुखद छाया में आनन्द का अनुभव करते हैं तो दूसरी और जगन्माता मूकाम्बिका के मंगलमय सान्निध्य में परम शांति का अनुभव करते हैं। विशेष दिनों में देवी यहाँ विविध प्रकार के आभूषणों और पुष्पमालाओं से अलंकृत होकर दिव्य सौन्दर्य की प्रतिमा बनकर परमात्मा की 'इच्छा', 'क्रिया' और 'ज्ञान' शक्तियों का समन्वित रूप धारण करके भक्तजनों को ब्रह्मानन्द के अलौकिक सागर में निमज्जित कर देती है।

श्रीरंगपट्टण के मन्दिर

श्रीरंगपट्टण में जब हैदर अली और टीपू सुलतान का शासन चल रहा था तब विधर्मी होते हुए भी इन दोनों राजाओं ने श्रीरंगनाथ मन्दिर को सुरक्षित ही रखा। कहा जाता है कि ये मुसल्मान शासक श्रीरंगनाथ के प्रति अपार श्रद्धा रखते थे और इस मन्दिर के कुछ मण्डपों को इन्होंने बनवाया। टीपू सुलतान ने तो भगवान् की पूजा के लिए बहुमूल्य चाँदी के उपकरणों को दान में दिया। श्रीरंगपट्टण में पुराने दुर्ग और कारागारों के खण्डहर, राजमहल, मसदिज आदि भी पर्यटकों को आकर्षित करते हैं। धार्मिक महत्त्व के साथ इस नगर का ऐतिहासिक महत्त्व भी है। जैसे कावेरी की दो धाराएँ श्रीरंगपट्टण को लिपटकर बहती हैं वैसे ही यहाँ हिन्दू संस्कृति के साथ इस्लाम संस्कृति भी इस स्थल को समृद्ध बना रही हैं।

'कर्नाटक' पहले मैसूर राज्य नाम से प्रसिद्ध था। मैसूर नगर के निकट मैसूर पहुँचने पूर्व श्रीरंगपट्टण नामक एक सुरम्य स्थल है जो एक प्रमुख वैष्णव केन्द्र माना जाता है। 'टीपूसुल्तान' श्रीरंगपट्टण का राज्य था। यहाँ अनन्तशयन पर विराजमान श्रीरंगनाथ का अति भव्य व पुरातन मन्दिर है जो लाखों भक्तों को आकर्षित करता है। इस पुण्य भूमि की यह विशेषता है कि पश्चिम दिशा से बहनेवाली कावेरी नदी यहाँ विभक्त होकर अपनी दो विमल धाराओं से इस पवित्र क्षेत्र को आवृत करके उसको एक रमणीय द्वीप बनाकर आनंद के साथ इठलाती हुई आगे प्रवाहित होती है और ऐसा लगता है कि मानो दिव्य सरिता कावेरी अपने दोनों हाथों से भगवान् रंगनाथ को आलिंगन करके अपने को कृतकृत्य बना रही है। 'कावेरी माहात्म्य' में इस स्थल को 'आदिरंग', शिवसमुद्र को 'मध्यरंग' एवं तमिलनाडु में कावेरी की दो धाराओं के बीच स्थित श्रीरंगम् को 'अन्त्यरंग' कहा गया है। 'ब्रह्माण्ड पुराण' में तो कर्नाटक के श्रीरंगपट्टण को पश्चिमरंग, तामिलनाडु के श्रीरंगम् को 'पूर्वरंग' और केलर के तिरुवनन्तपुरम को 'दक्षिणरंग' नाम से उल्लिखित किया गया है।

कहा जाता है कि कावेरी माता की प्रार्थना को मानकर भगवान् विष्णु श्रीरंगनाथ के रूप में यहाँ प्रकट होकर भक्तजनों को दर्शन दे रहे हैं। गोदावरी तट से परम तपस्वी गौतम ऋषि भी भागवान् के दर्शन पाने दक्षिण आये और इसी स्थान पर उनको श्रीरंगनाथ का साक्षात्कार हुआ। कहा जाता है कि देवी रंगनायकी के मुक्ताभरण अलमेलम्मा नामक एक रानी के थे। विजयनगर के सामंत श्रीरंगनाथ की पत्नी थी अलमेलम्मा। वह भगवान विष्णु के प्रति अत्यन्त भक्ति से अपने आप से भाव-विभोर हो जाती थी। फलस्वरूप वह अपने बहुमूल्य आभूषणों को हर शुक्रवार और मंगलवार को देवी रंगनायकी को अलंकृत करके आनंदविभोर हो जाती थी। जब श्रीरंगपट्टण मैसूर के ओडेयर राजा का अधीन हुआ तब अलमेलम्मा अपने पति श्रीरंगनाथ के साथ तलकाडु के उस पार मालङ्गी

नामक स्थान पहुँच गयी। परन्तु मैसूर के ओडेयर नरेश ने बलपूर्वक अलमेलम्मा के गहनों को छीनकर श्रीरंगनायकी देवी को पहना दिया। इस घटना से और पति की मृत्यु से दुःखी होकर अलमेलम्मा ने कावेरी नदी के प्रवाह में कूदकर आत्महत्या कर ली। यह कथा श्रीरंगपट्टण और तलकाडु दोनों स्थलों में सुनायी जाती है।

श्रीरंगनाथ मन्दिर के उत्तरी प्राकार में भगवान् के दो पादकमल प्रतिष्ठित हुए हैं। वैष्णव मन्दिरों में इन चरणपद्मों के दर्शन अनिवार्य माने जाते हैं। इस स्थान के पास खड़े होकर ऊपर देखने से मुख्य गर्भगृह के गोपुर के ब्रह्मानन्द विमान के दर्शन भी होते हैं। ऐसा विश्वास है कि भगवान् के चरण दर्शन के साथ ब्रह्मानन्द विमान के दर्शन भी प्राप्त हो तो भक्त-गण भगवान् विष्णु की सर्वव्यापकता को महसूस करके ब्रह्मानन्द का अनुभव पायेंगे। इसी प्राकार में एक सुन्दर मण्डप के साथ स्वर्ग द्वार भी पाया जाता है। उत्तरायण पुण्य पर्व में मकर संक्रान्ति के दिन इस मण्डप में भगवान् रंगनाथ का उत्सव मनाया जाता है। दक्षिण-भारत के वैष्णव मन्दिरों में एक स्वर्ग द्वार भी होता है जो सामान्यतया बन्द ही रहता है पर मार्गशीर्ष महीने के वैष्णव एकादशी के दिन यह द्वार भक्तों के लिए खुला रहता है। विश्वास किया जाता है कि वैष्णव एकादशी के पुण्य पर्व पर इस स्वर्गद्वार से प्रवेश करने पर लोग इसी लोक में स्वर्ग-सुख का अनुभव करेंगे।

इस मन्दिर में प्रवेश करते ही भगवान् श्रीरंगनाथ के दर्शन प्राप्त करने के लिए देश के विभिन्न प्रांतों से आए हुए भक्तजनों के नामसंकीर्तन का घोष सुनायी देता है जिसमें निर्मल भक्ति की ही आधार-श्रुति व्याप्त रहती है। गर्भगृह में श्रीरंगनाथ की अति सुन्दर मूर्ति के दर्शन होते हैं। यहाँ श्री महाविष्णु ही आदिशेष के पाँच फणों के छत्र के नीचे आदिशेष के ही शरीर को शयन बनाकर दायें हाथ पर अपने मुख को थामकर लेटे हुए हैं। वक्षस्थल पर जगन्माता श्री महालक्ष्मी की मूर्ति अंकित है और चरण-कमलों के पास कावेरी माता की तथा उससे कुछ दूरी पर महान् भक्त

गौतम ऋषि की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठापित हुई हैं। श्रीरंगनाथ की पंचधातु से बनी उत्सवमूर्ति 'कस्तूरिरंग' अत्यंत सुन्दर है और मूलमूर्ति के सामने रखी हुई है। विष्वकसेन की मूर्ति भी इस मन्दिर में प्रतिष्ठापित हुई है।

इस मन्दिर के गर्भगृह के प्राकारों को गरुड, मणवालमूनि, नादमुनि, आलवन्दार आदि वैष्णव आचार्यों की तथा आल्वार भक्तों की मूर्तियाँ अलंकृत करती हैं। भगवान् विष्णु तो भक्तप्रिय हैं, अतः वैष्णव मन्दिरों में मूल देवता के साथ वैष्णवमत के प्रतिपादक आचर्य एवं भक्तों और संतों की मूर्तियों की भी पूजा होती है। इसी प्राकार में सीता समेत श्री पट्टाभिराम की आकर्षक शिलामूर्ति प्रतिष्ठापित है। श्री रामचन्द्र सिंहासन पर वरद और अभय मुद्राओं के साथ आसीन हैं। पास ही श्री लक्ष्मण नमस्कार की मुद्रा में हाथ जोडकर धनुष और तूणीर लिए विनय-पूर्वक खड़े हैं। श्रीरामचन्द्र के पादारविन्द के पास परम भक्त हनुमान् की छोटी-सी आकृति अंकित है। इस मूर्ति की विशेषता यह है कि श्री राम के अनन्य सेवक हनुमान् अपने आराध्य राम के चरण को एक हाथ से स्पर्श करते हुए दूसरे में रामायण को धारण करके दास्यभाव से अत्यंत विनय के साथ बैठे हैं। हनुमान् की ऐसी आकृति अन्यत्र दुर्लभ है क्यों कि इस मूर्ति के द्वारा शिल्पकार ने भक्तिमार्ग में पादसेवन और श्रवण-पठन के महत्त्व को अभिव्यक्त किया है। श्रीरंगपट्टण के मन्दिर में पायी जानेवाली यह मूर्ति एक अपूर्व शिल्पाकृति मानी जाती है और प्राचीन काल के शिल्पियों की श्रद्धा और कल्पना की द्योतक है।

श्री रंगनाथ के मन्दिर के पश्चिमी प्राकार में लक्ष्मी नरसिंह, सुदर्शनमूर्ति, गजेन्द्रवरद विष्णु आदि देवताओं की शिल्पाकृतियाँ दर्शकों को आकर्षित करती हैं। इसी प्राकार के उत्तर-पश्चिम के कोने में देवी रंगनायकी का गर्भगृह है। सामान्यतः दक्षिण-भारत के मन्दिरों में मुख्य देवता के गर्भगृह के साथ उस देवता की पत्नी के लिए भी अलग गर्भगृह होता है। त्रैलोक्यनायकी साक्षात् लक्ष्मी ही यहाँ श्रीरंगनाथ की वल्लभा

रंगनायकी के रूप आविर्भूत होकर भक्तों पर कृपा-वात्सल्य बरसा रही है। देवी की मूर्ति तो देवताओं की भी शिल्पाकृतियाँ हैं। यहाँ विघ्ननाशक गणपति की नित्य-पूजा होती है।

इस मन्दिर में वैष्णवागमों के अनुसार वार्षिक महोत्सव, ब्रह्मोत्सव आदि मनाये जाते हैं। गौतम महर्षि ने मेष शुक्ल सप्तमी के दिन श्रीरंगनाथ की सर्वप्रथम आराधना की। इसी दिन यहाँ श्री रंगजयन्ती मनायी जाती है और रथ सप्तमी के पुण्य पर्व पर भी विशेष उत्सव आयोजित होता है। मन्दिर के बाह्य प्राकारों में भी कुछ मण्डप हैं और यहाँ तुलसी का वृन्दावन और एक शिला-लेख भी है जो ऐतिहासिक महत्त्व का है।

भगवान् लक्ष्मीनरसिंह का बहुत पुराना मन्दिर श्रीरंगनाथ के मन्दिर के पास दक्षिण-पूर्व दिशा में है। इसका गोपुर तो टूट गया है और दीवारें भी शिथिल हो गयी हैं। कहा जाता है कि लगभग आठ सौ साल पहले मैसूर के राजा नरसिंह ओडेयर ने इस मन्दिर का निर्माण किया। तिरुचिरापल्ली के पास एक अत्याचारी सामन्त को मल्लयुद्ध में हराकर जब नरसिंह ओडेयर मैसूर लौट रहे थे तब घने जंगल में उन्होंने नरसिंह के सुन्दर शिला-विग्रह को देख कर उसको अपने साथ घोड़े पर लादकर श्रीरंगपट्टण में उसका प्रतिष्ठापन किया। इस मन्दिर की मूल मूर्ति के प्रभामण्डल में दशावतार के शिल्प अंकित हुए हैं। चतुर्भुज नरसिंह की गोद पर लक्ष्मी देवी बैठी है और यह मूर्ति शिल्पकला का सुन्दर नमूना माना जाता है।

इस मन्दिर के बाहरी प्राकार में देवी सौम्यवल्ली तथा कृष्ण की परम भक्ता गोदा देवी के भी पूजा-गृह हैं। यहीं नवनीतकृष्ण की पत्थर की एक बड़ी प्रतिमा भी दर्शनीय है। श्रीरंगपट्टण में 'गंजा' नामक स्थल में एक गाँव है। कावेरी अत्यन्त मोहक रीति से बह रही है। भगवती 'निमिषांबा' का मंदिर है जो अत्यन्त रमणीय और मनमोहक है। देवी आँख बन्द करके

खड़ी है। क्षणमात्र में कहा जाता है कि अगर हम सच्चे मन से देवी के सम्मुख नतमस्तक होकर प्रार्थना करें तो क्षण मात्र में 'वरदान' देती है।

श्रीरंगपट्टण के उत्तर में कावेरी नदी के तट पर गंगाधरेश्वर का भी एक पुरातन मन्दिर है। कहा जाता है कि कावेरी नदी में यह शिवलिंग स्वयं उद्भव हुआ और गौतम महर्षि इसकी पूजा किया करते थे। इस मन्दिर के प्राकारों में अनेक छोटे-मोटे शिवलिंग पाये जाते हैं। यहाँ प्रतिष्ठापित विनायक, षण्मुख, नारायण, सप्तमातृकाएँ, काल-भैरव, वीरभद्र, सूर्य, चन्द्र एवं महिषासुरमर्दिनी की मूर्तियाँ भी कर्नाटक के प्राचीन कलावैभव को प्रकट कर रही हैं। इस मन्दिर की सबसे अधिक सुन्दर और आकर्षक प्रतिमा है भगवान् दक्षिणामूर्ति की। यह पँचधातु से बनी है और इसकी नीचे शिला की मूर्ति भी है। इस मूर्ति की यह विशेषता है कि यह दक्षिणाभिमुख न होकर पूर्वाभिमुख है। योगपट्ट धारण करके हाथों में जपमाला, पुस्तक, वीणा आदि के साथ चिन्मुद्रा सहित ज्ञान की साक्षात् मूर्ति बनकर दक्षिणामूर्ति सबको ज्ञान का उपदेश दे रहे हैं। दक्षिणामूर्ति की ऐसी अद्भुत प्रतिमा अन्यत्र देखने को उपलब्ध नहीं। इस मन्दिर के ध्वजस्तंभ के सामने एक मंडप में हँसगायत्री का शिलारूप हैं। गायत्री देवी की मूर्ति के नीचे एक पीठ पर व्यासमहर्षि, गणपति, सुब्रह्मण्य तथा चार शिष्यों के साथ आदिशंकराचार्य, इनकी मूर्तियाँ अंकित हुई हैं। पुराने जमाने में शायद यह एक प्रसिद्ध विद्याकेन्द्र रहा होगा, इसीलिए तो यहाँ ऐसी मूर्तियाँ पायी जाती हैं।

मेलुकोटे के मन्दिर

मैसूर नग के निकट पहाड़ियों से घिरे हुए अत्यन्त मनोहर तथा प्रशांत प्रदेश में बसा हुआ है मेलुकोटे शहर।

श्री रामानुजातार्य के ज़माने में तुरुनारायणपुरम् नाम से यह पवित्र स्थल मेलुकोटे प्रसिद्ध कर्नाटक के धार्मिक इतिहास में इस तीर्थस्थल

का बहुत ही बड़ा महत्व है। पुराणों में कहा गया है कि यह कृतयुग में 'वेदाद्रि' 'त्रेतायुग' में 'नारायणाद्रि', द्वापर युग में 'यादवाद्रि' और कलियुग में 'यतिशैल' नामों से प्रसिद्ध रहा। मेलुकोटे के मन्दिर में प्रतिष्ठापित लक्ष्मीनारायण स्वामी की दिव्य मूर्ति की आराधना सर्वप्रथम सत्यलोक में ब्रह्मा के द्वारा हो रही थी और ब्रह्मा के मानस पुत्र सनत्कुमार ने अपने पिता से इस मूर्ति को प्राप्त करके भूलोक में उसको प्रतिष्ठापित किया। तब भगवान् नारायण ने अपने ही वक्षस्थल से एक सुन्दर मूर्ति की सृष्टि करके ब्रह्मा को दिया। ऐसा भी कहा जाता है कि पूजा करने के लिए श्री राम ने ब्रह्मा से विष्णु की वह उत्सव मूर्ति ले ली और तब से यह मूर्ति 'रामप्रिय' नाम से प्रसिद्ध हुई। इसके बाद राजा राम के पुत्र कुश के हाथ में यह दिव्यमूर्ति सौंपी गयी और राजा कुश ने अपनी पुत्री कनकमालिनी जो यदुवंश के राजकुमार से विवाहित थी, उसको स्त्रीधन के रूप में यह उत्सवमूत्ति दे दी। अंत में यह सुन्दर प्रतिमा 'रामप्रिय' द्वारकाधीश श्री कृष्ण को प्राप्त हुई और परम श्रद्धा के साथ इसकी पूजा होने लगी। इसी समय जब कृष्ण के अग्रज बलराम भूप्रदक्षिणा करते तिरुनारायणपुर पहुँचे तो वहाँ के मंदिर में उन्होंने देखा कि वहाँ प्रतिष्ठापित विष्णु की मूल मूर्ति द्वारका नगरी में स्थित 'रामप्रिय' की सुन्दर मूर्ति से मिलती जुलती थी। इसे सुनकर श्री कृष्ण अत्यधिक हर्षित हुए और 'रामप्रिय' को भी साथ लेकर तिरुनारायणपुर पधारकर वहीं रहकर विष्णु की मूलमूर्ति और उत्सवमूर्ति दोनों की पूजा आराधना करते रहे। कृष्णावतार के बाद जब कलियुग का प्रारंभ हुआ तब देश-भर में अत्याचार-अनाचार फैलने लगे। दिल्ली का बादशाह दक्षिण-भारत पर आक्रमण करने लगा और यहाँ के मन्दिरों की कला-संपत्ति को लूटने लगा। तब तिरुनारायणपुर (मेलुकोटे) में स्थित, श्री कृष्ण द्वारा पूजित, अति सुन्दर तथा दिव्य विष्णु-मूर्ति को अपने साथ ले चला। बादशाह की बेटी विष्णु की इस भव्य मूर्ति के अलौकिक सौन्दर्य से मुग्ध हुई और मीरा की भाँति उसी को अपना प्रियतम मानकर

दिन-रात उसको अपने ही पास रखकर पूजा करती रही। इतने में यहाँ मेलुकोटे में श्री रामानुजाचार्य को स्वप्न में मालुम हुआ कि रामप्रिय नामक विष्णु की वह दिव्य मूर्ति दिल्ली बादशाह के पास है। शिष्यवर्गों तथा अनेक वैष्णव भक्तों को भी साथ लेकर श्री रामानुजाचार्य दिल्ली पहुँचे और ज्ञान-दृष्टि से जान गये कि राजमहल के एक बंद कमरे में वह मूर्ति रखी गयी है। निस्सीम भक्ति से प्रेरित होकर रामानुजाचार्य ने भगवान् को अपना ही प्रिय पुत्र मानकर उसको संबोधित करके कहा कि 'हे, भगवान् रामप्रिय, हे सम्पत् कुमार, हे मेरे प्रियपुत्र...!! शीघ्र तुम्हारा दर्शन-भाग्य प्राप्त हो'। कहा जाता है कि जिस प्रकार गाय की आवाज सुनकर दौड़कर पास आनेवाले बछडे की भांति भगवान् छोठे बालक के रूप में प्रकट होकर परम भक्त आचार्य रामानुज की गोदी पर बैठ गये। अतुलनीय आनन्द के साथ श्री रामानुज ने उस मंगलमय मूर्ति को मेलुकोटे के मन्दिर में प्रतिष्ठापित कर दिया और तब से विष्णु की यह मूर्ति चेलुवपिल्लै (प्रियपुत्र) के नाम से भक्तजनों की परम आराध्य बन गयी।

उपर्युक्त घटना से दिल्ली का बादशाह भी श्री रामानुजाचार्य की अनन्य भक्ति से प्रभावित हो उठा। बादशाह की पुत्री जो इस दिव्य मूर्ति से मुग्ध होकर विष्णु को अपना पति मानती थी, अपने अलौकिक प्रियतम के बिछोह को न सहती हुई श्री रामानुज और उनके शिष्यों के साथ मेलुकोटे चली आयी और इस पवित्र स्थान में रहकर आजीवन उस दिव्य मूर्ति की सेवा करती रही। मेलुकोटे के वैष्णव भक्त इस मुसलमान शाहजादी को नाचियार बीबी (देवी बीबी) कहकर परम आदर के साथ पुकारते थे और आज भी इस नाचियार बीबी की पूजा-आराधना तिरुनारायण के इस वैष्णव मन्दिर में प्रचलित है और मूलमूर्ति और उत्सव-मूर्ति के चरण कमलों के पास इस भक्त महिला को स्थान दिया गया है। यहाँ बादशाह की पुत्री 'आत्मा' की संकेत है, तो स्वयं भगवान 'परमात्मा' है-आत्मा, परमात्मा से अलग होकर बहुत दिनों तक जीवित नहीं रहती।

मेलुकोटे के प्रधान मन्दिर में तिरुनारायण की मूल-प्रतिमा अपरिमित सौन्दर्य का ही भंडार है। शंख, चक्र, गदा और अभयमुद्रा को धारण करके दिव्य प्रेम का ही स्वरूप बनकर भगवान् विष्णु इस प्रतिमा के रूप में सब पर कृपावृष्टि कर रहे हैं। गर्भगृह के सामने रंग-मंडप की बायीं ओर उत्सवमूर्ति चेलुवपिल्लै का पूजा-गृह है। इसी मंडप में कथा-कीर्तन तथा पारायण, गोष्ठी आदि आयोजित होती है। यहीं के एक स्तंभ में राजा ओडेयर की सुन्दर शिला-मूर्ति दर्शनीय है। कहा जाता है कि इस राजा ने मन्दिर में उत्सव, पूजा आदि चलाने के लिए विपुल धन का अनुदान दिया था और इसी कारण से यहाँ इस राजा को प्रथम आदरणीय स्थान दिया गया है।

इस मन्दिर के पश्चिमी प्राकार में भगवान् वैकुण्ठनाथ, श्री सुदर्शन चक्र (चक्राल् वार) तथा हनुमान् के पूजा-गृह भी हैं। इसी स्थान पर तिरुकच्चिनंबि नामक महान् वैष्णव भक्त की मूर्ति भी प्रतिष्ठापित हुई है। तिरुकच्चिनंबि एक अनन्य भक्त ही नहीं बल्कि उसकी सादगी, सेवा एवं निष्ठा, ज्ञान आदि के कारण भगवान विष्णु की विशेष कृपा के पात्रधारी थे। वैष्णव लोग इन्हें परम आराध्य और पूजार्ह मानकर इनका आदर करते हैं। इसी मंदिर के रंगमंडप के पूर्व की ओर सुन्दर ध्वजस्तंभ तथा दीपस्तंभ हैं और बाहर गरुड-मंडप है। इस गरुड-मंडप में गरुड के दर्शन करके मन्दिर में प्रवेश करते ही भक्तगण पूर्वी प्राकार में प्रतिष्ठापित एम्पेरुमान (विष्णु) को नमस्कार करने के बाद ही मन्दिर के प्रधान देवता तिरुनारायण के दर्शन करते हैं। पूर्व के प्राकार में ही वैष्णव संत लोकाचार्य की मूर्ति स्थापित हुई है जिनके जन्म-नक्षत्र के दिन यहाँ विशेष उत्सव व पारायण गोष्ठियाँ आयोजित होती हैं। भगवान् तिरुनारायण के गर्भगृह की उत्तरी ओर लोकमाता लक्ष्मी का गर्भगृह है। इस स्थल में लक्ष्मी देवी 'यदुगिरि नाचियार' नाम से पूजनीय हुई है और इसकी उत्सवमूर्ति को कल्याणी देवी कहते हैं। कहा जाता है कि रामानुजाचार्य को लक्ष्मी की यह दिव्य

उत्सवमूर्ति कल्याणी पुष्करिणी में प्राप्त हुई। अतः यह 'कल्याणी देवी' नाम से सकल भक्त जनों की आराध्या बन गयी।

लक्ष्मी देवी के इसी गर्भगृह के निकट नम्मालवार नामक सुप्रसिद्ध वैष्णव संत की शांतमूर्ति पायी जाती है। यहाँ नम्मालवार को संपिगे आल् वार भी कहते हैं क्योंकि एक (चंप) वृक्ष के नीचे यह मूर्ति प्राप्त हुई। तमिलनाडु के द्वादश आल्वारों (वैष्णव संत) में नम्माल् वार का स्थान सर्वेपरि है तथा इस महापुरुष की भक्तिपूर्ण रचनाएँ दक्षिण के वैष्णव-भक्ति साहित्य-भण्डार के अमूल्य रत्न हैं। इनकी रचनाएँ 'द्राविड़-वेद-सागर' कहलाती हैं जिन्होंने परवर्ती भक्ति-साहित्य को बहुत प्रभावित किया है और विशेष रूप से श्री रामानुजाचार्य के लिए ये पथ-प्रदर्शक बन गयीं। वेदान्त देशिकाचार्य ने भी वेद के रहस्यों को समझने के लिए इन्हीं ग्रन्थों की सहायता ले ली। हर वैष्णव मन्दिर में आल्वारों की आराधना होती है, पर मेलुकोटे के मन्दिर में नम्माल् वार को विशेष रूप से आदरणीय स्थान देकर उनकी भक्ति रचनाओं का पारायण किया जाता है।

इस मन्दिर में यदुगिरि देवी (लक्ष्मीदेवी) के गर्भगृह के सामने कल्याण - मण्डप निर्मित है। यहाँ के शिला-स्तंभों में अति सुन्दर शिल्पाकृतियाँ अंकित हुई हैं। रामायण के हर अध्याय को यहाँ भव्य शिल्प के रूप में साकार कर दिया गया है और कृष्णावतार से संबन्धित कुछ प्रसंगों को भी पत्थरों में अंकित कर दिया गया है।

मेलुकोटे के इस वैष्णव मन्दिर में हर साल 'पाँचरात्र आगम' के अनुसार विविध उत्सव भी आयोजित किये जाते है। इनमें से सबसे महत्त्वपूर्ण तथा लाखों भक्तों को देश-विदेश कोने-कोने से आकर्षित करनेवाला महोत्सव है 'वैरमुडि सेवा'। 'वैरमुडि का अर्थ है 'हीरे का मुकुट'। चैत्र महीने में आयोजित होनेवाले ब्रह्मोत्सव के प्रधान अंग के रूप में मन्दिर की अति सुन्दर उत्सवमूर्ति भगवान् रामप्रिय (संपत्कुमार) को नवरत्नजड़ित बहुमूल्य मुकुट से अलंकृत करके नगर की प्रधान वीथियों में

उसकी शोभायात्रा होती है। लाखों लोग वैरमुडि से अलंकृत भगवान् के दिव्य सौन्दर्य का आनन्द लूटते-लूटते मंत्र-मुग्ध-से हो जाते हैं। हीरे का यह मुकुट उत्सव के ही दिन मैसूर के राजमहल से भक्तिपूर्वक लाया जाता है। रात को करीब नौ बजे उत्सव का प्रारंभ होता है और सुबह चार या पाँच बजे तक चलता है। उत्सव समाप्त होते ही तुरंत यह दिव्यमुकुट मैसूर के राजमहल में वापस ले जाकर सुरक्षित रखा जाता है। इस तरह साल में एक बार सिर्फ कुछ घंटों के लिए ही इस हीरे का मुकुट का दर्शन मिलता है। कहा जाता है कि यह अनमोल मुकुट हीरे, मोती और नवरत्नों से ही नहीं अपितु अत्युज्वल नागरत्नों से भी जड़ा हुआ है। अतः इसकी चकाचौंध को कोई देर तक देख नहीं सकता....! मेलुकोटे क्षेत्र के भक्तजनों का यह अटूट विश्वास है कि यह अद्भुत वज्रमुकुट वैकुण्ठनाथ श्री विष्णु के सिर को विभूषित कर रहा था। एक बार प्रह्लाद के पुत्र विरोचन ने इस बहुमूल्य किरीट को चुराकर पाताल लोक में छिपाकर रख दिया और देवताओं की प्रार्थना से वैनतेय गरुड विरोचन से लड़कर जब मुकुट को वहन करते हुए आकाश में उड रहा था तब भूलोक में गोपालक कृष्ण बाँसुरी बजा रहा था। बाँसुरी के दिव्य नाद से आकर्षित होकर गरुड़ ने उस मुकुट को श्री कृष्ण को पहना दिया। श्रीकृष्ण भी संतुष्ट होकर हीरे के इस दिव्य मुकुट से अपनी आराध्य मूर्ति श्री रामप्रिय को विभूषित किया और तब से इस 'वैरमुडि' का उत्सव मेलुकोटे में हर साल मनाया जाता है।

इसी मन्दिर के उत्तरी प्राकार में श्रीरामानुजाचार्य की मूर्ति प्रतिष्ठापित हुई है। भक्तों का विश्वास है कि अब भी श्री रामानुजाचार्य उस शिलामूर्ति के रूप में जीवित रहकर अपने इष्टदेव तिरुनारायण के दर्शन करते हुए भक्त पर भी कृपावृष्टि कर रहे हैं। श्री रामानुज ने स्वप्न में भगवान् विष्णु की आज्ञा पाकर एक वाल्मीक से आवृत्त तिरुनारायण की मूर्ति को निकालकर मेलुकोटे में प्रतिष्ठापित करके आगम-विधियों के अनुसार वहाँ पूजा उत्सवादि की व्यवस्था भी की। दीर्घ काल तक वहीं

रहकर जब रामानुजाचार्य श्रीरंगक्षेत्र को लौट जाना चाहते थे तब भक्त और शिष्यवृन्द व्यथित हो उठे और कहा जाता है कि उनकी व्यथा को दूर करने के लिए अपनी ही एक मूर्ति बनाकर उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करके मन्दिर में स्थापित की जिससे भक्तगण संतुष्ट हुए।

पहाडियों के बीच स्थित मेलुकोटे एक पवित्र तपोवन सा है। सांसारिक झंझटों में उलझा हुआ मानव अगर कुछ दिनों के लिए ही क्यों न हो मेलुकोटे में रहे तो निस्सन्देह वह भगवान के सानिध्य में परम शांति को प्राप्त करेगा।

धर्मस्थल मंदिर

यह मंदिर 'रत्नगिरी पहाड़ी' के पश्चिम में स्थित है। यह मंदिर जैन प्रमुख 'बिरामन्ना परगड़े' द्वारा बनवाया गया था। धर्मस्थल के निकट नेत्रावती नदी की पवित्र प्रवाह आप्लावित एवं निसर्ग चारुता से मंडित यह पुण्य स्थल इतिहास प्रसिद्ध है। इस पवित्र स्थल के बारे में भक्ति औऱ श्रद्धा तो पैदा करती ही है; साथ-साथ इस यात्रा स्थलों की धार्मिक, सांस्कृतिक महत्व सामाजिक परिस्थिति और यहाँ के हितकारी पर्यावरण की महिमा इत्यादि अनेक विषयों की जानकारी भी प्रदान करती है। धर्मस्थल एक महान् धार्मिक केन्द्र के रूप में आज भी भारत के धार्मिक और सांस्कृतिक इतिहास में अमिट स्थान प्राप्त किया है।

धर्मस्थल मंदिर में भगवान शिव का 'स्वर्ण शिवलिंग' प्रतिष्ठित है। इस मंदिर के प्रमुख देवता भगवान शिव के अवतार श्री मंजुनाथेश्वर अन्नप्पा स्वामी है। कहा जाता है कि इस पवित्र तीर्थस्थल में प्रतिष्ठित शिवलिंग मंगलोर के पास स्थित 'कद्री' से लाया गया था। यह एक अत्यंत पवित्र मंदिर माना जाता है। इस शिवलिंग के पीछे सालिग्राम के नरसिंह भगवान का दर्शन भी कर सकते हैं जो स्वयं भगवान विष्णु के दशावतारों में एक है।

इस मंदिर की विशेषता यही है कि यहाँ की देखरेख जैन प्रशासन करता है, पर पूजा माध्व कुल के शिवल्ली हिन्दू ब्राह्मण पुजारियों द्वारा की जाती है।

मंदिर के देवताएँ इस प्रकार है—भगवान शंकर, मंजुनाथा के रूप में जाना जाता है जो अम्मवारु, तीर्थंकर चंद्रप्रभा और सुरक्षात्मक देवताओं की, कालराहु, कानारकायी कुमारस्वामी और कन्याकुमारी है। मंदिर अद्वितीय माना जाता है। यहाँ का संप्रदाय शैव हिन्दू धर्म है।

800 साल पूर्व धर्मस्थल को मल्लडमाडि में कुडुमा बेल्तांगडी में एक गाँव के रूप में जाना जाता था। यह जैनबंट नेल्लैडि बीडु नामक एक घर में मुखिया बीमन्ना परगडे और उनकी पत्नी अम्मु बल्ला भी रहते थे। पौराणिक कथा के अनुसार धर्म के अभिभावक स्वर्गदूतों मानव रूपों ग्रहण किया और धर्म का अभ्यास किया तथा जारी भी रखा तदनंतर प्रचार और प्रसार करने के लिए एक जगह की तलाश में बिरम्मन्ना परगेडे के निवास पहुँचे। उन दंपतियों ने बहुत ही संप्रदाय के अनुगामी थे और अत्यन्त आदर के साथ आगंतुकों की मेजबानी की। परगेडे दंपतियों की ईमानदारी औऱ उदारता से अत्यंत संतुष्ट होकर, उसरात धर्मदेवताओं ने परगेडे के सपने में दिखाई दिया। पूरी तरह से ‘धर्म’ के प्रसार-प्रचार तथा सुरक्षा के लिए उस घर को ‘न्यायघर’ बनाया। परगेडे दंपतियों ने अपने लिए एक अलग घर बनाया औऱ जिस घर में पहले रहते थे वहाँ ‘धर्मदैव’ की पूजा शुरू कर दिया। आज भी धर्माधिकारी डॉ. वीरेन्द्र हेग्गड़े जी इस ‘न्याय घर’ में बैठकर अंतिम निर्णय सुनाते है।

चार दैवा–आज भी यह पूजा जारी है। कालाराहु, कालारकयी, कुमारस्वामी और कन्याकुमारी के लिए अलग-अलग धार्मिक स्थलों का निर्माण भी हुआ। ‘धर्म देवता’ ने ‘परगेडे’ दंपतियों से इस प्रकार प्रमाण करवाया कि इस क्षेत्र ‘धर्मक्षेत्र’ नाम से प्रसिद्ध होगा और हमेशा धर्मबद्ध

रहना, जो भी इस क्षेत्र में न्याय के लिए पदारते है उन्हें न्याय देना, अन्नदान भी करना होगा – बदले में 'धर्मदेवता' हमेशा इस क्षेत्र की सुरक्षा परगेडे परिवार की सुरक्षा औऱ दान की बहुतायत प्रसिद्ध वादा किया।

परगेड़े के रूप में वांछित, धार्मिक स्थलों का निर्माण किया और अनुष्ठान करने के लिए ब्राह्मण पुजारियों को आमंत्रित किया। इन पुजारियों 'देशीदैव' के बगल में एक शिवलिंग स्थापित करने के लिए परगेड़े का अनुरोध किया। मंगलोर के समीप कदरी मंजुनाथ स्वामी की स्थापना इस दैव के आसपास किया गया।

परगेड़े परिवार जैन बंट थे। बिरमन्ना परगेड़े और उनकी पत्नी 'अम्मु परगेडे' उस मंदिर के वंशानुगत न्यासी है। परिवार के ज्येष्ठ सदस्य 'धर्मधिकारी' बन सकता है तथा 'हेग्गडे' शीर्षक का उपयोग कर सकता है। 'हेग्गडे' एक 'न्यायाधीश' बनकर सिविल शिकारयों सुनक और अंत में धर्म के ज़रिए न्याय और फैसले सुनाते है। आज तक 'पेरगड्डे' परिवार लगभग बीस पीढ़ियों से यह पद ग्रहण करते आ रहे हैं। अब वर्तमान धर्माधिकारी – डा. वीरेन्द्र हेग्गडे है।

डॉ. वीरेन्द्र हेग्गडे, रत्नवर्मा हेग्गडे तथा रत्नम्मा हेग्गडे के पुत्र है। सन् 1968 पिता के आकस्मित मृत्यु के कारण उन्हें 'धर्माधिकारी' पर बैठना पड़ा। तब से लेकर आज तक डॉ. वीरेन्द्र हेग्गडे का नाम सिर्फ भारत में नहीं बल्कि विदेशों में भी देदीप्यमान है।

डॉ. हेग्गडे जी ने 'धर्माधिकारी' के अलावा सामाजिक कार्यों में भी अपने आपको समर्पित कर दिया है—उनसे सामाजिक क्षेत्र अत्यन्त व्यापक और विशाल है। विश्व में डॉ. हेग्गड़े जी का नाम अत्यन्त आदर के साथ लेते है। उनके अनुसार– अगर एक व्यक्ति कुछ करना चाहता है तो बहुत कुछ कर सकता है । उसके लिए उदाहरण स्वयं डॉ. वीरेन्दर् हेग्गडे जी है। एक निष्ठावान धर्माधिकारी ही नहीं बल्कि समाज की उन्नति के लिए अपने आपको समर्पित कर लिया।

अन्नदान

हर दिन महान् क्षेत्र 'धर्मस्थल' में कम से कम 12 हजार लोग आते है। यहाँ जाति, धर्म आदि देखे बिना 'अन्नदान' की आयोजना सभी लोगों के लिए है। 'रसोई' घर से लेकर 'भोजन शाला' तक इतनी स्वच्छ और स्वाधिष्ठ भोजन शायद कहीं नहीं देखने के लिए उपलब्ध है। Modern Technology 100 किलो के 'अन्न' बनाने का बड़े-बड़े पात्र हैं। तृप्ति से बैठकर यात्री गण भोजन कर लेते हैं। ऐसे ही वहाँ ठहरने के लिए दो या तीन दिन के लिए उचित व्यवस्था भी है। Nominal 50 से 100 रुपए लेकर बाद में वापस कर देते हैं।

सामूहिक विवाह

दहेज प्रथा को जड़ से निर्मूलन विनाश करने के लिए सामूहिक विवाह की आयोजना डॉ. वीरेन्द्र हेग्गडे जी ने सन् 1972 में ही एप्रिल महीने में शुरु किये। डॉ. हेग्गडे जी की (धर्माधिकारी की ओर से मंगलसूत्र, वधु-वर के लिए कपड़े की जोड़ियाँ देते हैं।) तदनंतर विवाह भोजन भी वधू-वर तथा उनके अतिथियों को भी मिष्टान्न खिलाते है। सन् 2013 एप्रिल महीने में 10.698 जोड़ियों की विवाह संपन्न हुई।

विद्यादान

धर्मस्थल क्षेत्र 25 विद्या Institute को Manage करते हैं। प्राइमरी से लेकर गुरुकुल योगा, संस्कृत तथा इंजिनीयरिंग, मेडिकल, डेण्टल साइन्स क्षेत्र धर्मस्थल, उजरे, मंगलूर उडुपि, धारवाड़ हासन मैसूर तथा अन्य नगरों में भी डिग्री कॉलेज आदि हैं। धर्माधिकारी डॉ. हेग्गड़े जी का मुख्य उद्देश्य यही है कि हर एक भारतीय नागरीक भारतीय संस्कृति से अवगत होना चाहिए।

औषध दान

क्षेत्र के ग्राम और दूसरे गाँव के लोगों के लिए उचित औषद दान करते हैं। उदाहरण के लिए तपेदिक बीमारी के लिए क्षेत्र के ट्रस्ट एक उचित असपताल खुला है। आयुर्वेदिक अस्पताल हासन तथा उडुपि में पुराने जमाने के अनुसार आयुर्वेदिक इलाज करते है। नेत्रावती के पास ही 'Nature Cure Hospital' क्षेत्र ने खुला है। मूल उद्देश्य वायु, भूमि, जल, आकाश स्वयं डॉ. हेग्गडे जीने 'योगा' के लिए अत्यन्त सक्रिय रूप से भाग लिया है। उनके अनुसार 'योगा' के जरिए मानव पूर्ण रूप से तंदुरुस्त पा सकता है। डॉ. हेग्गडे जी ने सांस्कृतिक तथा रिसर्च सेन्टर मंजुनाथेश्वर मंदिर के कमिटी के द्वारा खुलवाया है। मुख्य उद्देश्य यही है कि पुरातन Manscripts and Paintings को बचाकर रखता है। इसके अलावा 'मंजूषा म्यूजियम' के जरिए Rare Vintage Cars Collection करते हैं तथा 'नवलगूड के कारपेट' embroidery और यक्षगान आदि। भारत सरकार ने इस साल डॉ. वीरेन्द्र हेग्गड़े जी को 'पद्मभूषण' जैसे अत्युन्नत प्रशस्ति से पुरस्कृत किया।

होरनाडु

चिक्कमगलूर जिला पंचायत गाँव में स्थित एक पवित्र हिन्दू मंदिर है। मंदिर के मुख्य देवता माता अन्नपुर्णेश्वरी है। कहा जाता है कि आदि शंकराचार्य जी से यह मंदिर प्रतिष्ठापित किया गया था। पर सन् 1973 में सोने की देवी की प्रतिष्ठापना हुई। बेंगलूर से 330 की.मी. दूरी पर स्थित है।

अन्नपूर्णेश्वरू की आशीर्वाद से जो भी व्यक्ति भक्ति से प्रार्थना करता है उसे कभी भी भोजन के लिए किसी भी प्रकार से कमी नहीं होगा। कहा जाता है कि स्वयं भगवान शिव भी अन्नपूर्णा के सम्मुख भिक्षा पात्र हाथ में लेकर देवी से प्रार्थना की तब उसे शाप विमोचन प्राप्त हुआ।

मंदिर के मार्ग घन जंगल और वनस्पती से आवृत्त है। इस मंदिर में भी यात्रियों के लिए ठहरने के लिए उचित जगह, ओढ़ने के लिए कंबल और सुबह काफी, नाश्ता, दोपहर का भोजन की आयोजन है। यह मंदिर तथा माता 'अन्नपूर्णेश्वरी' देदीप्यमान है।

तोण्डनूरु के मन्दिर

तोण्डनूरु (तोन्नूर) नामक यह गाँव मेलुकोटे शहर से करीब दस मील की दूरी पर है और यहाँ भगवान् श्री लक्ष्मीनारायण का एक पुरातन भव्य मन्दिर है। यद्यपि इस पुण्य क्षेत्र की अधिक प्रसिद्धि नहीं हुई है, फिर भी कर्नाटक के धार्मिक और सांस्कृतिक इतिहास में इस गाँव का स्पष्ट अंकन हुआ है। आज से करीब नौ सौ साल पहले विशिष्टाद्वैत-मत के प्रवर्तक श्री रामानुजाचार्य तमिलनाडु के श्रीरंगम् क्षेत्र को छोड़कर धर्म-प्रचार करने के लिए पुण्यभूमि कर्नाटक के इसी गाँव को अपना निवासस्थान बनाकर धर्म-प्रचार करने लगे। तब उन्होंने बिट्टिदेव नामक वीर-शूर प्रतापी जैन नरेश को अपने सिद्धान्तों का उपदेश देकर उसे वैष्णवमतावलंबी बना दिया। विष्णु के महान् भक्त बनने के बाद यह होयसल राजा बिट्टिदेव विष्णुवर्धन नाम से प्रसिद्ध हुआ और भगवान् विष्णु का परम विनीत दास, बनकर अनेक मन्दिरों के निर्माण के द्वारा भक्ति-प्रचार में तन-मन-धन अर्पित करने लगा। तोण्डनूरु नामक इसी गाँव में जगत्विख्यात वैष्णव आचार्य श्री रामानुज का कर्नाटक में प्रथम पदार्पण हुआ था और इसी पवित्र स्थल में इतिहास-प्रसिद्ध बिट्टिदेव का मत-परिवर्तन हुआ और इन्हीं ऐतिहासिक घटनाओं के कारण यह गाँव अधिक महत्व माना जाता है।

इसी पुण्य क्षेत्र में तोण्डनूरु नंबी नामक एक वैष्णव भक्त को भगवान् श्री लक्ष्मीनारायण ने अपने दिव्य दर्शन देकर उसे अनुगृहीत किया । इसी कारण से यहाँ के मन्दिर में विराजमान श्री लक्ष्मीनारायण को 'नंबी

नारायण' कहकर पुकारते हैं। इसी तोण्डनूरु नंबी के प्रयत्न से होयसल नरेश बिट्टिदेव ने श्री रामानुजाचार्य का कृपा-पात्र बनकर वैष्णवमत को अपना लिया। यहाँ के पुरातन मन्दिर में भगवान् लक्ष्मीनारायण की सुन्दर मूर्ति प्रतिष्ठापित हुई है। मूलमूर्ति के साथ श्रीदेवी और भूदेवी की प्रतिमाएँ भी जुड़ी हुई हैं। भगवान् नारायण की मूलमूर्ति की यह विशेषता है कि भगवान् के दक्षिण हस्त में शंख और वाम हस्त में चक्र अंकित हुए हैं। गर्भगृह में ही श्री नारायण की उत्सवमूर्ति, नवनीतकृष्ण की खूबसूरत प्रतिमा, यदुगिरी देवी और कल्याणी देवी की भी सुघटित मूर्तियाँ दर्शनीय हैं।

श्री गोपालकृष्णस्वामी के इस मन्दिर में मूल-मूर्ति के रूप में भगवान् पार्थसारथि विराजमान हैं। श्रीदेवी और भूदेवी की प्रतिमाएँ भी मूलमूर्ति के आस-पास प्रतिष्ठापित हैं। वैखानस-आगमों के विधि-विधानों के अनुसार यहाँ भगवान् की पूजा-आराधना होती है। गोपालकृष्णस्वामी की उत्सवमूर्ति भी रुक्मिणी और सत्यभामा की मूर्तियों के समेत अत्यंत सुन्दर होकर भक्तों को आकर्षित करती है। इस मन्दिर की विशेषता यह है कि यहाँ के कृष्ण को मूर्ति दायें पैर के बदले बायें पैर को आगे रखकर खड़ी हैं। इस क्षेत्र के बारे में यह भी कहा जाता है कि इसी पुण्यस्थल पर भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन को गीतोपदेश से अनुगृहीत किया। गोपालकृष्ण मन्दिर की ही कुछ दूरी पर शिव का भी एक देवालय है। खेद की बाद है कि इस मन्दिर के भग्नावशेष ही आज वहाँ दृष्टिगोचर होते हैं।

इसी गाँव में श्री योगनरसिंह का भव्य मन्दिर भी ऐतिहासिक महत्त्व से संपन्न है। श्री रामानुजाचार्य इसी मन्दिर में रहकर भगवान् की सेवा करते रहे और इसी मन्दिर में तोण्डनूरु नंबि नामक परम वैष्णव के प्रयत्न से होयसल नरेश बिट्टिदेव से रामानुजाचार्य की मुलाकात हुई और रामानुजाचार्य के तपोबल से बिट्टिदेव की शारीरिक और मानसिक पीडाएँ दूर हुई।

कहा जाता है कि जब होयसल नरेश बिट्टदेव किसी युद्ध में घायल होकर अपनी शारीरिक कमज़ोरी के कारण निरुत्साहित हो गया था। तब विष्णु के परम भक्त श्री रामानुजाचार्य ने उसको सांत्वना देकर रोगमुक्त करवाया। बिट्टिदेव की पुत्री भी मानसिक रोग से पीड़ित थी। तब भी आचार्य रामानुज इसी नरसिंहस्वामी के मन्दिर में बैठकर रात-दिन सतत प्रार्थना में लग गये जिसके फलस्वरूप राजकुमारी स्वस्थ हो उठी और बिट्टिदेवने भी, जो जैन-मतावलंबी था, खुश होकर श्रीरामानुज का शिष्य बनकर वैष्णवमत को स्वीकार किया। इसी नरसिंहस्वामी के देवालय में और एक अद्‌भुत घटना हुई जो वैष्णव परमाचार्य श्रीरामानुज के अपरिमित आध्यात्मिक ज्ञान व अद्वितीय तपोबल पर प्रकाश डालती है। कहा जाता है कि जैन-मत के प्रकांड पंडितों ने जब रामानुज को शास्त्रवाद के लिए ललकारा तब रामानुज एक परदे के पीछे बैठकर ज़ैन पंडितों के प्रश्नों के उत्तर देने लगे। हज़ारो जैन आचार्य इकट्ठे होकर वैष्णवदर्शन के बारे में एक साथ हज़ारों प्रश्न पूछने लगे और रामानुज अत्यंत शांत होकर सब के जटिल प्रश्नों के उत्तर भी देने लगे और अंत में उन्होंने जैनों को परास्त कर दिया। आश्चर्यचकित होकर लोग जब परदे कें पीछे झाँकने लगे तब वहाँ आचार्य के बदले सहस्र फणों से युक्त आदिशेष को देखा। रामानुज ही आदिशेष के अपने पूर्वांश रूप को धारण करके हजारों प्रश्नों के एक साथ उत्तर दे रहे थे। यह रामानुज के जीवन की एक अत्यद्‌भुत घटना मानी जाती है। यह घटना तोण्डनूरु के श्री नरसिंह के मन्दिर में हुई, अतः वैष्णव भक्त इसी स्थल को परम पवित्र मानतै हैं। इस घटना का स्मरण दिलाती हुई यहाँ श्री रामानुज की सुन्दर प्रतिमा मंडप की बायीं ओर प्रतिष्ठापित है। इस प्रतिमा की विशेषता यह है कि श्री रामानुज के दोनों हाथों में शंख और चक्र अंकित हुए हैं और भक्तजनों का यह भी विश्वास है कि इस प्रतिमा में रामानुचार्य की प्राणशक्ति मौजूद रहती है। इन्हीं कारणों से तोण्डनूरु का यह नरसिंह-मन्दिर वैष्णवों का एक मुख्य तीर्थस्थल माना

जाता है। इस मन्दिर की प्रधान मूलमूर्ति योगनरसिंह की है जो चतुर्मुख ब्रह्म की परम आराध्य थी। लोककल्याण के लिए भगवान् श्री नरसिंह योगपट्ट धारण करके योगासन में ध्यानावस्थित होकर, दोनों हाथों को घुटनों पर रखकर आसीन हैं। भक्तजन इस दिव्य मूर्ति के दर्शन पाते ही अपने को धन्य समझते हैं।

इसी गाँव के निकट दो पहाड़ियों के बीच एक विशाल जलाशय है जो 'रामानुज तालाब' से प्रसिद्ध है। इस गाँव के निवासियों का कथन है कि श्री रामानुचाजार्य ने ही लोकसेवा की मंगलकामना से प्रेरित होकर यह तालाब बनवाया जिसके पानी से आसपास की लगभग एक हज़ार एकड़ जमीन की सिंचाई होती है। यह तालाब इतना पावन माना जाता है कि चारों ओर के गाँवों से लोग अपनी अपनी ग्रामदेवताओं को यहाँ ले आकर उनकी अभिषेकोत्सव मनाते हैं। पुराणों में उल्लेख है कि इसी पवित्र तालाब में नहाने के लिए अप्सराएँ आया करती थीं। जो भी हो यह स्थल अत्यंत पवित्र माना जाता है और श्री रामानुजाचार्य के मंगल-शासन जो मन्दिर में पाया जाता है उस पर अंकित हुआ है कि जो भी भक्त इस तालाब में स्नान करके अपने को पवित्र बनाकर भगवान् लक्ष्मीनारायण, गीताचार्य श्री पार्थसारथि तथा ब्रह्मा से आराधित श्री नरसिंहस्वामी के दर्शन करता है उसको सकल तीर्थ-यात्रा का फल प्राप्त होता है।

मैसूर के मन्दिर

भारत के धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक इतिहास में इस सुन्दर शहर ने अपना ही एक विशिष्ठ स्थान शप्त किया है। वह कर्नाटक के इतिहास-प्रसिद्ध शहरों में मैसूर प्रमुख है। मैसूर और उसके आस-पास कई अद्‌भुत दर्शनीयय स्थान हैं जो हर साल लाखों पर्यटकों को देश-विदेशों से आकर्षित करते हैं। इनमें से अग्रगण्य है चामुण्डी-पहाड़। कावेरी नदी को पार करके इस नगर तक पहुँचने-पहुँचते दूर से ही उन्नत

शिखरों से त्त चामुण्डी पहाड़ का दिव्य दर्शन होता है जो मैसूर की नगर-शोभा को बढ़ानेवाला एक सुन्दर, समनाकर्षक आभूषण-सा स्थित है। इसी पर्वत पर एक भव्य मन्दिर में त्रिलोकमाता देवी चामुण्डेश्वरी की दिव्य मूर्ति का सान्निध्य प्राप्त होता है। श्री चामुण्डेश्वरी मैसुर की रक्षा करनेवाली अधिदेवता माना जाता है और प्राचीन काल से ही मातृस्वरूपिणी इस देववता के कृपा-साम्राज्य में शिल्प, चित्र, संगीत, नृत्य आदि कलाओं का विकास होता आ रहा है और यहाँ के विवासी सुख-शांतिमय जीवन बिताते आ रहे हैं। पहाड़ पर पड़कर देवी चामुण्डेश्वरी के पवित्र मन्दिर में प्रवेश करते ही वक्तजनों को शांति का ऐसा अनुभव होने लगता है मानों वे अपने प्रिय मातृ-गृह में प्रवेश कर रहे हैं।

इस चामुण्डी पहाड़ का पौराणिक नाम महाबलगिरि है। इसी पर्वत पर चामुण्डेश्वरी के मुख्य मन्दिर की थोड़ी दूर पर महाबलेश्वर का एक पुरातन मन्दिर है। यहाँ महाबलेश्वर चाँदी के कवच से ढके एक छोटे स्वयंभू लिंग के रूप में दर्शन दे रहे हैं। इस मन्दिर के मण्डप में सप्तमातृकाएँ, गणपति, वीरभद्र, नटराज आदि देवताओं की सुन्दर मूर्तियाँ भी प्रतिष्ठित हैं। यहाँ ज्ञान के देवता दक्षिणामूर्ति भी एक छोटे –से विग्रह के रूप में आध्यात्मिक विद्या का मौन उपदेश देते हुए भक्तजनों को दर्शन दे रहे हैं। इसी शिवालय के बाहर भी गणपति की एक शिला-मूर्ति है जो स्वयंभू कही जाती है।

मैसूर के राजघराने की कुलदेवी लोकमाता भगवती देवी चामुण्डेश्वरी है। मैसूर ऐसा एक पुण्यस्थल है जहाँ जगन्माता चामुण्डी ने अज्ञान की प्रतिमूर्ति महिषासुर को ज्ञान प्रदान करके अनुगृहीत किया। पौराणिक कथा प्रचलित है कि महिषासुर लोकमाता देवी के साथ धष्टता से युद्ध करके पराजित होकर शरण की खोजमें सारी दुनिया भटककर अंत में मूला नक्षत्र से युक्त सप्तमी तिथि के सोमवार की रात इसी चामुण्डी पर्वत पर आकर देवी के चरणकमलों के बीच फँस गया। माँ चामुण्डेश्वरी

भी शूलायुध से उस पर वार करके खड्गायुध से उस दुष्ट असुर का सिर काट दिया। इससे महिषासुर का अज्ञान-तम दूर हुआ और देवी की कृपा से ज्ञानसंपन्न होकर अनुगृहीत हुआ। नवमी के दिन महिषासुर ने चामुण्डी माता के चरणकमलों की शरण लेकर प्राणत्याग कर दिया। देवी के करकमलों से दुष्टनिग्रह नवमी का दिन हुआ, अतः आश्वीज महीने की शुक्लपक्ष नवमी बडे कोलाहल से सारे कर्नाटक में मनायी जाती है।

एक ही शिला से बनी महानन्दी की बृहत् मूर्ति का दर्शन चामुण्डी पर्वत पर पैदल चढ़ते समय मार्ग में वैसे तो शिवालयों में प्रधान द्वार पर नन्दी की मूर्ति अवश्य दृष्टिगोचर होती है, परन्तु चामुण्डी पर्वत के नन्दी का यह विग्रह तो अत्यंत सुन्दर है और ऐसा लगता है कि साक्षात् एक वृषभ (बसव) चामुण्डेश्वरी के निवासस्थान की रक्षा करते हुए भक्तिपूर्वक बैठा है। इसी शिला में उत्कीर्ण छोटी-छोटी घंटियाँ और रुद्राक्ष की मालाएँ इस बृहदाकर वृषभ को अलंकृत करती हैं और कर्नाटक के शिल्पकारों की करकुशलता एवं कलाप्रेम को घोषित करती हैं। इस महान् वृषभ के दर्शन के बिना चामुण्डी पहाड़ की यात्रा अपूर्ण ही रह जायगी। मैसूर नंजनगूड बीच मार्ग में एक बहुत ही सुन्दर श्रीनिवास देवालय है।

अप्रमेय मंदिर

बेंगलोर और मैसूर के बीच के महामार्ग में चेन्नपट्टण नामक शहर के समीप चार किलोमीटर की दूरी पर मळूर नामक एक छोटा-सा वैष्णव स्थल है। यहाँ श्री अप्रमेय स्वामी का एक पुराना मन्दिर है जिसके महत्त्व के बारे में साधारण लोग अधिक जानकारी नहीं रखते। श्री मध्वाचार्य द्वारा प्रतिपादित द्वैतमत के सिद्धान्तों को मधुर गीतों के रूप में प्रस्तुत करके हरि-भक्ति का व्यापक प्रचार करनेवाले हरिदासों में व्यासराज के शिष्य श्री पुरन्दरदास सर्वश्रेष्ठ थे जिन्होंने इस मन्दिर में प्रतिष्ठापित

नवनीत-कृष्ण के दिव्य सौन्दर्य की महिमा से प्रेरित होकर एक अत्यंत लोकप्रिय गीत गाकर भक्तसमाज को आनन्द-विभोर कर दिया।

इस मन्दिर के सब से अधिक आकर्षक स्थल है बाल नवनीत-कृष्ण की दिव्य मूर्ति। यशोदानन्दन बालकृष्ण मेखला की नन्हीं-नन्हीं घंटियों को निनादित करते हुए सर्वांग विभूषित होकर घुंघराले बाल और माथे पर कस्तूरी तिलक के साथ हाथ में माखन लिये घुटनों के बल रगते हुए दर्शन दे रहे हैं और यह माखन-चोर भक्तों का चितचोर बनकर सबके हृदय में बस जाते हैं। संत-प्रवर पुरन्दरदास ने इस दिव्य शिशु की स्तुति में 'जगदोद्धारन आडिसिदळे यशोदा' भक्तिरसपूर्ण इस गीत को गाकर अमर यश प्राप्त किया। इससे सिद्ध होता है कि भारत के मन्दिर भक्ति के ही केन्द्र नहीं अपितु संगीतादि कलाओं के भी प्रेरक स्रोत हैं।

नंजनगूडु के मन्दिर

पुण्यभूमि भारत की यह विशेषता है कि यहाँ के हर मुख्य क्षेत्र से कोई न कोई पौराणिक कथा जुड़ी रहती है। ये कथाएँ अत्यंत रोचक होकर इन पवित्र स्थलों के बारे में भक्ति और श्रद्धा तो पैदा करती ही हैं और साथ-साथ इन यात्रा-स्थलों की भौगोलिक स्थिति, धार्मिक और सांस्कृतिक महत्त, पुरातन सामाजिक परिस्थिति, यहाँ के हितकारी पर्यावरण की महिमा इत्यादि अनेक विषयों की जानकारी भी प्रदान करती हैं। स्कन्द पुराण में तो सुक्षेत्र नंजनगूडु व नंडुण्डेश्वर की महिमा, कपिला-कौण्डिण्य नदियों के उद्भव आदि विषयों से संबन्धित कथाएँ विस्तृत रूप से वर्णित हुई हैं जिससे यह बात स्पष्ट होती है कि प्राचीन काल से ही यह नंजनगूडु क्षेत्र धार्मिक महत्त्व से संपन्न रहा होगा।

मैसूर नगर के निकट कपिला-कौण्डिण्य नदियों के पवित्र प्रवाहों से आप्लावित एवं निसर्ग-चारुता से मण्डित यह शहर इतिहास-प्रसिद्ध है। 'स्कन्द पुराण' जैसे ग्रन्थों में नंजनगूडु शहर का विस्तृत विवरण प्राप्त होता

है। पुराणों में 'गरलपुरी' नाम से उल्लिखित इस पावन क्षेत्र में देवी पार्वती समेत श्रीकण्ठेश्वर (नीलकंठ ईश्वर) नगर के अधिदेवता के रूप में यहाँ के भव्य मन्दिर में विराजमान होकर भक्तों को भवरोग से मुक्त करके उनपर कृपामृतवृष्टि कर रहे हैं।

नंजनगूडु शहर में प्रवेश करते ही पर्यटकों को आकर्षित करनेवाले केन्द्र-बिन्दु के रूप में स्थित है अति उन्नत, अति सुन्दर गोपुरद्वार से अलंकृत श्री नंजुण्डेश्वर स्वामी (नीलकंठेश्वर) का अति भव्य पुरातन मन्दिर। मन्दिर में प्रवेश करते ही ऐसा लगता है कि शिल्प-कला देवी के मनमोहक सम्राज्य में हम प्रविष्ट हुए हैं। श्रीकंठेश्वर के सान्निध्य में हर कहीं सौन्दर्यदेवता का ही चेतोहारी नृत्य दृष्टिगोचर होता है। मन्दिर के मुख्य गर्भगृह में लोकहित के लिए स्वयं विषपान करके भक्तजनों के तापत्रय को आपनी कृपावृष्टि से दूर करने के लिए श्री नंजुण्डेश्वर अद्भुत लिंग के रूप में विराजमान हैं। शारीरिक एवं मानसिक व्याधियों से पीड़ित लोग लाखों की तदाद में यहाँ आकर भगवान् की आराधना करके रोगमुक्त हो जाते हैं।

नंजुन्डेश्वर के देवालय के प्राकारों में असंख्यात शिवलिंगों की स्थापना हुई हैं। उत्तरी प्राकार में शिव पुराणों में वर्णित तेईस शिव-लीलाओं को अति सुन्दर शिल्पकृतियों के रूप में उतारकर उन्हें नयनाभिराम बनाया गया है। इन प्रतिमाओं को देखते ही भक्तजन आनन्दविभार हो जाते हैं और हृदय में भक्ति-कल्लोलिनी उमड़ने लगती हैं। अमृतघटेश्वर की शिला प्रतिमा तो इतनी आकर्षक है कि दर्शकों की दृष्टि उसी पर स्थिर रह जाती है।

इसी मन्दिर में देवी पार्वती के गर्भगृह की बायीं ओर एक सुन्दर मरकत लिंग प्रतिष्ठापित हुआ है जिसका ऐतिहासिक महत्त्व है। मैसूर गेजेटियर में उल्लिखित हुआ है कि टिप्पू सुल्तान ने इस बहुमूल्य मरकत लिंग को आभार प्रदर्शन के रूप में नंजुण्डेश्वर को अर्पित किया था।

नंजनगूडु क्षेत्र में और भी कुछ छोटे-मोटे मन्दिर है। प्रधान मन्दिर के पास ही परशुराम मन्दिर, श्री रामलिंगेश्वर देवालय, चामुण्डेश्वरी का भव्य मन्दिर, लिंगभठ्ठ का एक छोटा मन्दिर, पारम्मा देवी (ग्राम देवता) का आलय इत्यादि हैं। यह क्षेत्र परशुराम की तपोभूमि माना जाता है और दक्षिण काशी कहलाता है मैसूर के भूतपूर्व राजवंशों से पोषित और आराधित पुरातन देवालय में विराजमान नंडुण्डेश्वर भवरोगवैद्य है जिसके करुणामृतधारा से लोग सदा सुखी रहते हैं।

श्रृंगेरी क्षेत्र के मन्दिर

पवित्र तीर्थस्थल श्रृंगेरी कर्नाटक में सह्याद्रि पर्वतमालाओं के बीच रमणीय उपत्यका में स्थित है चारों ओर मेघाश्लिष्ट गिरि-शिखर, पास ही तुंगा नदी की स्फटिक-शुभ्र जलधारा का कलकल, घने जंगलों की नीरवता को चीरकर सुनायी देनेवाला पक्षियों का कलरव, भ्रमरों का गुंजार-प्रकृति के इस सुन्दर प्रांगण में निर्मित है धार्मिक और ऐतिहासिक महत्त्व से संपन्न एक भव्य मन्दिर जिसमें सकल विद्याओं की अधिष्ठात्री देवी लोकमाता श्री शारदांबिका विराजमान होकर सब पर अनुग्रह की वर्षा कर रही है।

अद्वैत-मत के प्रवर्तक आदि शंकराचार्य ने तपोभूमि श्रृंगेरी में शारदापीठ की स्थापना करीब बारह सौ वर्षों पहले करके विद्याधीश्वरी माँ शारदा देवी की दिव्यमूर्ति को प्रतिष्ठापित करके इस स्थान को आध्यात्मिक विद्या का प्रधान केन्द्र बना दिया। धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि परिवर्तन देश में होते आ रहे हैं, फिर भी श्रृंगेरी मठ ने एक महान् धार्मिक केन्द्र के रूप में आज भी भारत के धार्मिक और सांस्कृतिक इतिहास में अमिट स्थान प्राप्त किया है।

कहा जाता है कि ऋष्यश्रृंगेश्वर के सान्निध्य के कारण इस प्रान्त में सुवृष्टि होती रहती है और लोग सदा संतुष्ट रहते हैं। इससे सिद्ध होता है कि जिस श्रृंगेरी में श्री शंकराचार्य ने शारदपीठ की स्थापना करके अद्वैत विद्या

का प्रचार किया, उसके आस-पास के प्रदेशों में ऋषि-मुनि लोग तपस्या कर रहे थे जिसके कारण यह स्थल अत्यंत पवित्र हो उठा है और आज भी अनेक मुमुक्षु साधकों को आकर्षित कर रहा है।

श्रृंगेरी में शंकर मठ के विशाल प्रांगण में श्री शारदा देवी का सुन्दर मन्दिर निर्मित हुआ है। श्रीमठ के महाद्वार से प्रवेश करने पर दायीं ओर मुख-मण्डप एवं पंचकलशों से युक्त गोपुर से अलंकृत शिलामय मन्दिर में लोकमाता श्री शारदांबिका सब को अपने दर्शन से अनुगृहीत करती हुई आसीन है। आचार्य शंकर ने पवित्र तुंगा नदी के वाम तट के एक शिलाफलक पर श्रीचक्रयंत्रोद्धार करके विद्याधीश्वरी श्री शारदादेवी की शक्ति का आवाहन करके उसके ऊपर श्रीचन्दनवृक्ष के काष्ठ से बनी श्री शारदादेवी की दिव्यमूर्ति को प्रतिष्ठापित किया। आचार्यों एवं आराधकों की सुविधा के लिए एक आश्रम को भी स्थापित किया। आगे चलकर चौदहवीं शती में सुप्रसिद्ध महान् ब्रह्मज्ञानी श्री विद्यारण्य ने शारदादेवी की काष्ठमूर्ति के स्थान में अधिक सुवर्णांश से युक्त पंचधातु के अति भव्य विग्रह को प्रतिष्ठापित करके देवालय का निर्माण भी किया। तदनन्तर इस शताब्दी के प्रारंभ में श्रीशंकर-परंपरा के तैंतीसवें आचार्य श्रीसच्चिदान्द शिवाभिनव नरसिंह भारती ने आज के इस अति सुन्दर शिलामय मन्दिर का पुनर्निमाण करवाया। उनके शिष्य महातपस्वी श्री चन्द्रशेखर भारती ने इस पुनर्निर्माण कार्य को संपन्न करके वैभव के साथ मन्दिर का कुम्भाभिषेक भी किया और भक्तजनों के लिए देवी के दर्शन एवं पूजा-आराधना को और भी सुविधापूर्ण बना दिया।

श्री शंकराचार्य ने देवी श्री शारदाम्बा का प्रतिष्ठापन करने के बाद इस पुण्य क्षेत्र की रक्षा के लिए चारों दिशाओं में चार रक्षक देवताओं को स्थापित किया है। पूर्वदिशा के रक्षक के रूप में श्री कालभैरव की मूर्ति का, नरसिंहवन से जुड़े एक उन्नत स्थल पर एक छोटा-सा भव्य मन्दिर है। क्षेत्र के पश्चिम में रक्षक के रूप में श्रीआंजनेय की मूर्ति, दक्षिण दिशा की रक्षिका

के रूप में दुर्गादेवी की मंगलमयी मूर्ति और उत्तर भाग में देवी कालिकांबा प्रतिष्ठित हुई है। इसी कालिकांबा के देवालय के पास हर साल विजयदशमी के दिन माँ शारदादेवी का विजयोत्सव वैभव के साथ मानाया जाता है।

श्रृंगेरी पुण्यस्थल के मध्यभाग में एक छोटी सी पहाडी पर स्थित मल्लिकार्जुन अथवा मलहानिकरेश्वर का मन्दिर भी पुराण प्रसिद्ध है। इस मन्दिर के पुरातन शिवलिंग के उपासक महर्षि विभाण्डक, अंत में इसी लिंग में एकाकार हो गये।

कुक्के क्षेत्र के मन्दिर

कर्नाटक के प्रमुख तीर्थस्थलों में पवित्र कुमार-धारा के तट ग्रामीण प्रदेश में स्थित सुब्रह्मण्यक्षेत्र भी एक है। यह क्षेत्र इतिहास प्रसिद्ध ही नहीं बल्कि विश्व प्रसिद्ध है। आज भी सिर्फ भारत के कोने-कोने से नहीं बल्कि विश्व के अनेक स्थानों से 'सर्प संस्कार' 'अश्लेष बलि' 'नागप्रतिष्ठा' करवाने के लिए आते हैं। जाति, मत आदि भूल कर 'सर्प' शाप से विमुक्त होने के लिए यहाँ पधारते हैं और पुराणों में इस स्थल से संबंधित अनेक कथाएँ वर्णित हैं। इस क्षेत्र के भव्य मन्दिर में परमशिव के पुत्र श्री सुब्रह्मण्य की उपासना और आराधना की जाती हैं। इस मन्दिर की विशेषता यह है कि इस क्षेत्र में श्री सुब्रह्मण्य सर्पराज वासुकी के मुख से पूजा, अर्चना आदि स्वीकार करके उसी वासुकी के रूप में भक्तजनों का उद्धार करते हुए विराजमान हैं। सुब्रह्मण्य क्षेत्र, जो मध्यकाल में कुक्केपट्टण नाम से सुप्रसिद्ध था, नगरों के कोलाहल से दूर एक छोटा-सा प्रशान्त शहर है और इसके निवासी अत्यंत सीधे-सादे जीवन बिनाते हुए सदा धार्मिक कार्यों में ही निरत रहते हैं।

इसी कुमारपर्वत के पश्चिम की ओर सुब्रह्मण्य क्षेत्र बसा है जिसमें सुब्रह्मण्य स्वामी के प्रधान मन्दिर है तथा दर्पण तीर्थ के उस पार सुब्रह्मण्य

स्वामी का एक प्राचीन मन्दिर भी दर्शनीय है। इस मन्दिर को आदि सुब्रह्मण्य कहते है। कहा जाता है कि श्री सुब्रह्मण्य ब्रह्महत्या दोष से मुक्त होने के लिए इसी स्थान में तपस्या कर रहे थे। इस मन्दिर के गर्भगृह में एक बड़ा वल्मीक दृष्टिगोचर होता है और इसी का नित्यपूजन तथा नैवेद्य आदि होते हैं। जनश्रुति है कि इस वल्मीक में कृष्णसर्प निवास करता है और पूजा के समय वह बाहर आकर नैवेद्य, अर्चना आदि को स्वीकार करता है। यहाँ वल्मीक के रूप में विराजमान श्री सुब्रह्मण्य की प्रार्थना करने से सब प्रकार की मानसिक व्याधियों एवं चर्मरोगों से लोग मुक्त हो जाते हैं। इन मन्दिर में वल्मीक की मृत्तिका ही प्रसाद के रूप में दी जाती है जो सर्पविष को भी दूर करने की अद्भुत शक्ति रखती है। इस महिमामयी मृत्तिका को भक्तिपूर्वक शरीर पर लगाने से अथवा पानी में घोलकर पीने से सकलरोगों का निवारण होकर लोग स्वस्थ रहते हैं। इस मन्दिर में लोहे, तांबे, चाँदी, पंच-धातु आदि की छोटी छोटी नाग-प्रतिमाओं को अर्पित करने की मनौती करते हैं। लोगों का विश्वास है कि इस मनोति से संतान-भाग्य की प्राप्ति होती है।

"सुब्रह्मण्यस्य महिमा वर्णितुं केन शक्यते।
यत्रोच्छिष्टमपि स्पष्टंश्चित्रिणः शोधयत्यहो।"

इसी मन्दिर के गर्भगृह के उत्तरी भाग में "कुक्के लिंग" नाम से प्रसिद्ध कुछ लिंग पाये जाते हैं। कहा जाता है कि।

श्री सुब्रह्मण्य के गर्भगृह की दायीं ओर प्राकार के अन्दर ही श्रीव्याससंपुट नरसिंह स्वामी की सन्निधि है। इसके सामने ही बाहरी प्रकार में श्री सुब्रह्मण्य मठ भी हैं जिसके मध्वसंप्रदायी अधिपति संपुट-नरसिंह की नित्यपूजा करते हैं। कहा जाता है कि आठ सौ साल पहले द्वैतमत के प्रवर्तक श्री मध्वाचार्य इस पवित्र स्थल पर प्रतिदिन आया करते थे और भी व्यासमहर्षि से प्राप्त शालिग्रामों को एक संपुट में रखकर दर्पण नदी के तट पर उनकी पूजा भी किया करते थे। इन शालिग्रामों के साथ वहीं उपलब्ध

एक नरसिंह विग्रह को भी मिलाकर मध्व मठ की स्थापना करके उन्होंने अपने अनुज श्री विष्णुतीर्थ को पूजा का अधिकार सौंप दिया। अपने शिष्य अनिरुद्ध तीर्थ को मठाधिपति बनाकर तीर्थयात्रा के लिए निकल पडे और आज तक सुब्रह्मण्यमठ की यह परंपरा चलती आ रही है। श्री व्याससंपुट नरसिंह के गर्भगृह में ऊपर रुक्मिणीसमेत भगवान् विट्ठल और मध्य में श्री लक्ष्मी नरसिंह का विग्रह ये दोनों दर्शकों के हृदय में भक्तिभाव जगाते हैं। इन विग्रहों के नीचे शालिग्रामों से भरपूर व्याससंपुट के साथ लक्ष्मीनारायण, योग नरसिंह, उत्सवनरसिंह, उडुपी बालकृष्ण, कालीयमर्दन कृष्ण, आदि की सुन्दर प्रतिमाएँ भी रखी गयी हैं जो कर्नाटक के मूर्तिकारों की कुशल कारीगरी के नमूने माने जाते हैं। यहाँ व्याससंपुट और नरसिंहस्वामी की ही प्रधान आराध्य के रूप में पूजा की जाती है। इस गर्भगृह के विमानगोपुर में भी श्री नरसिंह, विट्ठल आदि की मूर्तियाँ आकर्षक हैं।

कुक्के सुब्रह्मण्य पुण्य क्षेत्र की विशेषता यह है कि यहाँ वैष्णव और शैव दोनों संप्रदायों के भक्त श्रद्धा और भक्ति के साथ आते हैं। इस मन्दिर की विशेष महत्ता इसमें है कि यह एक प्रकार की समन्वयात्मक धार्मिक भावना को जगाता है और यहाँ ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ इस भारतीय आदर्श का अनुभव होता है।

सोमनाथपुर के देवालय

मनोरम प्राकृतिक सुषमा से मण्डित कर्नाटक की यह विशिष्टता होती है कि यहाँ के हर क्षेत्र में, हर मन्दिर में मानव की दिव्य सौन्दर्यानुभूति का ही साक्षात्कार होता है। मैसूर नगर के निकट सोमनाथपुर नामक एक गाँव करीब सात सौ साल पहले इस प्रदेश में होयसल राजा तृतीय नरसिंह का शासन चल रहा था। सोमनाथ नामक एक अधिकारी, जो सौन्दर्य का पुजारी और कला का पोषक था, उसके मन

में यह परिकल्पना जाग उठी कि इस मनोरम स्थान पर एक सर्वांगसुन्दर मन्दिर बनवाकर कर्नाटक की अद्भुत शिल्पकला को अमर बनवाया जाय। सुविख्यात शिल्पी जक्कणाचार्य के नेतृत्व में उनके शिष्यगणों के सहयोग से सोमनाथ का स्वप्न साकार हो उठा और आज भी इस पवित्र स्थल पर निर्मित श्री चेन्नकेशव स्वामी का भव्य मन्दिर हर साल लाखों विश्वभर पर्यटकों को आकर्षित कर रहा है। सन् 1258 में होयसल राज्य के अधिकारी सोमनाथ ने कावेरी नदी के वाम तट पर एक अग्रहार की स्थापना की जो सोमनाथपुर नाम से प्रसिद्ध हुआ। बाद में सन् 1268 में चेन्नकेशव के सुन्दर मन्दिर का भी निर्माण इसी स्थल पर हुआ।

सोमनाथपुर का यह मन्दिर जो होयसल की विशिष्ट शैली में बनाया गया है, 'त्रिकुटाचल' भी कहलाता है क्योंकि इस मन्दिर के तीन भाग होते हैं जो सुन्दर शिल्पालंकृत गोपुरों से युक्त हैं। मुख्य गर्भगृह पूर्वाभिमुख है जहाँ श्री चेन्नकेशव की सुन्दर मूर्ति स्थापित थी परन्तु यह भव्य शिल्पाकृति अब यहाँ नहीं है। दक्षिण के गर्भगृह में श्री वेणुगोपाल की तथा उत्तर के पूजागृह में श्री जनार्दन की अति सुन्दर मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित हुई हैं। परन्तु आजकल इस मन्दिर में आगमों के विधि-विधानों के अनुसार पूजा तो नहीं होती। अब यही पुरातत्त्व-संशोधन विभाग के अधीन है और पर्यटकों के लिए एक मुख्य प्रेक्षणीय स्थान बन गया है। यह देवालय तीन फुट ऊँचाई की अष्टकोण की एक वेदिका पर बनायी गयी है। इस वेदिका के आठों कोनों के निचले भागों में हाथी की एक –एक गंभीर शिलामूर्ति दर्शनीय है। दर्शकों को ऐसा लगता है कि ये अष्टगज इस कलापूर्ण मन्दिर को अपनी पीठ पर धारण करके गर्व के साथ खड़े हैं। मन्दिर के चारों ओर खुले प्राकार हैं और बाहरी प्राचीन से लगा हुआ एक आँगन भी है जो चौंसठ भागों में विभक्त है। इस नक्षत्राकार मन्दिर के बाहरी प्राचीन में चारों ओर उसके निचले भाग से शिला-पट्टिकाओं की छः पक्तियाँ एक के ऊपर एक बनायी गयी हैं जिन पर अंकित छोटी-छोटी शिल्पाकृतियों को

देखने से ऐसा लगता है कि शिल्पी ने पत्थर पर नहीं परन्तु मखमल पर कशीदे का काम कर दिया है। यह कर्नाटक की होयसल शिल्प-शैली की एक विशिष्टता है। गट-सेना, अश्व सेना, विविध प्रकार के फूल व फल, वृक्ष-वल्लरियाँ-इसस तरह मन्दिर के चारों ओर छोटी-छोटी अद्भुत शिलाकृतियाँ उत्कीर्ण हुई हैं। इतना ही नहीं, एक ओर रामायण महाकाव्य के दृश्य, दूसरी ओर महाभारत के आकर्षक दृश्य और कहीं तो भागवत-पुराण में वर्णित दृश्य आदि को पत्थर पर खुदवाकर कुशल शिल्पियों ने उन्हें अमर बना दिया है। वाल्मीकि आदि महाकवियों की साहित्यिक रचनाओं को कर्नाटक के शिल्पियों ने शिल्पकाव्य का रूप देकर उन्हें अमर बना दिया है। इस मन्दिर में भक्त प्रह्लाद के चरित का जो कलात्मक शिल्पांकन हुआ है जो वर्णनातीत है। महाकवि तुलसीदास की उक्ति 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' यहाँ की हर शिलामूर्ति में सार्थक हो उठी है। वीक्षकगण इनके दर्शन करके आनन्द विभोर हो सकते हैं। होयसल काल के शिल्पियों ने सौन्दर्य-भावना के साथ भक्तिभावना से भी प्रेरित होकर इस मन्दिर में अद्भुत कला की ऐसी सृष्टि की है जिससे निर्जीव पत्थर भी सजीव हो उठे हैं।

सोमनाथपुर के इसी मन्दिर में भगवान् विष्णु और लोकमाता देवी के भी विविध रूपों को शिलाओं में अंकित कर दिये गये हैं। परन्तु खेद की बात है कि यहाँ की हर शिलामूर्ति का कोई न कोई न कोई अंग तोड़ा गया है। कला के पुजारी शिल्पियों की अद्भुत सृष्टि तो कुछ क्रूर मानवों का शिकार बन गया है। कर्नाटक के कुछ मन्दिरों में जो नाशकार्य हुआ उसमें इतिहास के विदेशी और विधर्मी आक्रमण के कुछ पन्नों को ही नहीं अपितु असंस्कृत, असभ्य मानव की नाशकारी प्रवृत्ति को भी देख सकते हैं। इसी देवालय के अन्दर मुख-मण्डप में जिन शिला-स्तंभों का निर्माण हुआ है ये चमकीले लोहे के स्तंभ के समान है। इन खंभों के ऊपरी भाग के कोनों में शिलामय कदलीपुष्पगुच्छों को देखकर दर्शक आश्चर्यचकित हो जाते हैं...!!

ऐसा लगता है कि इन पुष्प गुच्छों के दल एक एक करके अभी अभी विकसित हो रहे हैं...!! इसी मंडप में ऊपर से लटकनेवाली पत्थर से बनी श्रृंखलाएँ हिलती रहती हैं मानों वे लोहे की हों...!! इस तरह इस मन्दिर के कण-कण में होयसल काल के शिल्पियों की उँगलियों का चमत्कार दृष्टिगोचर होता है। सोमनाथपुर का यह भव्य मन्दिर होयसल शासन काल के सुप्रसिद्ध शिल्पकार जक्कणाचार्य के पथप्रदर्शन में कुछ कुशल शिल्पियों द्वारा बनाया गया है। कुछ प्रमुख शिल्प-पीठिकाओं पर मल्लितम्मा, मसनितम्मा, परशुराम, मारन्न आदि शिल्पियों के नाम भी अंकित हुए हैं। इस मन्दिर की प्रत्येक शिल्पाकृति में कारिगरों की सौन्दर्य भावना के साथ उनकी अद्भुत परिकल्पना और प्रतिमा भी सजीव हो उठी हैं। ये कला-सृष्टियाँ तो भक्ति से भी अभिभूत शिल्पकारों की रचना होने के कारण इनमें एक प्रकार की दिव्यता भी छा गयी है।

नरसिंह मन्दिर से ही कुछ दूरी पर कावेरी नदी के ही सुम्य तट पर मूलस्थानेश्वर का छोटा मन्दिर है। त्रिलोकमाता देवी पार्वती के लिए भी यहाँ गर्भगृह है। तिरमुक्कूडल नरसीपुर और सोमनाथपुर दोनों स्थलों में निर्मित मन्दिरों के वास्तु-शिल्प विशेष उल्लेखनीय है और भारत के वास्तु एवं शिल्पकलाओं के क्षेत्र में इनका अपना ही विशिष्ट महत्त्व है। यहाँ के मुख्य मन्दिर द्राविड शैली में निर्मित हैं और कलात्मक ढंग से अलंकृत उँचे-ऊँचे गोपुरों से युक्त होकर आकर्षणीय लगते हैं।

तिरुमुक्कूडल से करीब दस मील की दूरी पर शिवसमुद्रम नामक सुप्रसिद्ध प्रेक्षणीय स्थल है जो हर साल लाखों पर्यटकों को आकर्षित करता है। इस रमणीय स्थान की नैसर्गिक शोभा तो वर्णनातीत है। चारों ओर का घना जंगल, बीच में खेतों की हरियाली, पहाड़ों की ऊँचाई से गिरनेवाले जलप्रपात, जलधारा की लयबद्ध निनाद आदि से युक्त प्रकृति-माता तो यहाँ एक अपूर्व शोभा से युक्त होकर यहाँ कावेरी नदी शिवसमुद्र गाँव को एक द्वीप बनाकर आगे प्रवाहित होती है। ये दोनों जलधाराएँ गगन चुक्की,

बरचुक्की नामक दो जलप्रपातों के रूप में ही सौ फुट की ऊँचाई से नीचे गिरकर फिर साथ होकर प्रवाहित होती है।

यहाँ सोमेश्वर तथा रंगनाथ मंदिर अत्यन्त प्रसिद्ध है। श्रीरंगपट्टण के रंगनाथ को 'आदिरंग' नाम से अभिहित किया जाता है। शिवसमुद्र के रंगनाथ को 'मध्य रंग' नाम से तथा तमिलनाडु के तिरुचि के रंगनाथ को 'अंत्य रंग' नाम से अभिहित किया जाता है। कहा जाता है कि एक ही दिन में तीनों रंगों के दर्शन से दर्शकों का जीवन सार्थक तथा पवित्र हो जाते हैं। कावेरी यहाँ प्रवाहित होकर अंत में समुद्र में विलीन हो जाती है।

तलकाडु के मन्दिर

मैसूर नगर से करीब तीस मील की दूरी पर कावेरी नदी के सुरम्य तट पर स्थित है तलकाडु नामक पुरातन तीर्थक्षेत्र।

यह इतिहास-प्रसिद्ध शहर तलकाडु गंगवंशीय राजाओं की राजधानी थी। गंगराजाओं के शासन के विकास काल में विजयापुर, मुडुक्कुतोरे, मालिंगी आदि सातों शहर इस महानगर में समाविष्ट थे और गंगराजाओं ने धर्म और भक्ति के प्रचार करने हेतु यहाँ तैंतीस देवालयों के साथ पाँच मठों का भी निर्माण किया। इस स्थल पर जमी अपार रेत की राशियों में कुछ मन्दिर तो निमग्न होकर अदृश्य हो गये हैं। पूर्वकाल में इस पुण्यस्थल में अनेक जैन बसदियाँ (बस्तियाँ) भी थीं और यह जैन धर्म का मुख्य केन्द्र भी रहा। काल के फेर में प्रकृति के प्रताडन से यद्यपि अनेक मन्दिर रेत के समुद्र में डूबकर भग्न हो गये हैं, फिर भी पाँच पुरातन शैव मन्दिर आज भी यहाँ पाये जाते हैं जो हर साल लाखों भक्तों और पर्यटकों को आकर्षित करते हैं। इतिहासकारों का कहना है कि गंगराजाओं के काल से ही यहाँ 'पंचलिंगोत्सव' मनाया जाता था। तलकाडु के पाँच शैव मन्दिर अत्यंत प्रसिद्ध है, अतः यह पंचलिंगस्थल कहा जाता है। महीन रेत से भरे इस विशाल प्रदेश के मध्यभाग में श्री वैद्यनाथेश्वर के, पूर्व में अर्केश्वर के, पश्चिम में मरुलेश्वर के, दक्षिण में पातालेश्ववर के एवं उत्तर में मुडुक्कुतोरे

नामक पहाड़ पर मल्लिकार्जुन स्वामी का मन्दिर निर्मित होने के कारण तलकाडु का प्रदेश अत्यंत पवित्र माना जाता है।

तलकाडु के अन्तर्गत ही मुडुकतोरे नामक पवित्र स्थल में एक पहाड़ पर श्री मल्लिकार्जुन स्वामी का मन्दिर दर्शनीय है। प्रवेशद्वार के गोपर पर बड़े आकार के नन्दी भक्तों के दर्शन देते हुए आसीन हैं। गर्भगृह में एक छोटे लिंग के रूप में कृपानिधान श्री मल्लिकार्जुन विराजमान हैं। इस लिंग के ऊपर कामधेनु के पादचिन्ह अब भी दिखायी देते हैं और जनश्रुति है कि गोमाता कामधेनु प्रतिदिन यहाँ आकर शिवलिंग पर क्षीराभिषेक किया करती थी। इस मन्दिर के मुख्य गर्भगृह के पास ही देवी भ्रमरांबिका का भी पूजास्थान है। यहाँ के अर्चक त्रिभुवन-सुन्दरी जगन्माता भ्रमरांबिका को विविध आभूषणों एवं पुष्पों से इस तरह अलंकृत करते हैं कि देवी के दिव्य सौन्दर्य से दर्शक चकित हो जाते हैं। जिस पर्वत पर मल्लिकार्जुन का मन्दिर है उसका नाम सौमगिरि कहलाता है। कहा जाता है कि तिरुमुक्कूडल नामक दिव्य नरसिंहक्षेत्र को केन्द्र बनाकर अष्टदल कमल के समान आठ पर्वत अष्टदिशाओं में स्थित हैं। पूर्व दिशा में सोमगिरि पर्वत अष्टदिशाओं में स्थित हैं। पूर्व दिशा में सोमगिरि पर्वत है, दक्षिण-पूर्व में अर्कपर्वत तथा दक्षिण में देवेश पर्वत दिखायी देते है। दक्षिण-पश्चिम में जनकगिरि पश्चिम में महाबलगिरि (चामुण्डी पहाड), उत्तर-पश्चिम में तिन्दुकाचल, उत्तर दिशा में मल्लिकाचल एवं उत्तरपूर्व में कुन्दगिरि पर्वत स्थित हैं।

तलकाडु में पंचलिंग दर्शनोत्सब बारह साल में एक बार जब कार्तिक अमावास्या सोमवार को होती है और सूर्य और चन्द्र दोनों वृश्चिक राशि में रहते हैं, तब मानाया जाता है। तलकाडु तो मन्दिरों का ही शहर है। आजकल अरण्य विभाग की ओर से रेत के टीलों को निकालकर काजू, श्रीगन्ध आदि वृक्षों को रोपने का प्रयत्न हो रहा है। तब रेतों की गहराई में छिपे अनेक शिवलिंगों के प्रकट होने की संभावना है।

*****

कर्नाटक के प्रमुख धार्मिक स्थान

महाबलेश्वर का पुरातन भव्य मन्दिर जो समुद्रतट के अति निकट ही निर्मीत हुआ है और पुराणों में इस मन्दिर से संबन्धित कई कथाएँ उपलब्ध होती हैं। इतिहासकारों का कथन है कि यह बनवासी कदंब वंश के राजाओं ने निर्मित किया होगा। पुराणों में उल्लिखित क्षेत्र-महात्म्य तो हमें त्रेता युग को ले जाता है और यह भी बताता है कि यह मन्दिर रामायण, महाभारत के काल से ही लोकप्रिय रावण द्वारा निर्मित पंच शिवक्षेत्रों में यह गोकर्ण प्रमुख है जहाँ महाबलेश्वर आराध्य देवता बनकर भक्तजनों पर कृपावृष्टि कर रहे हैं। रावण द्वारा निर्मित अन्य चार शिवक्षेत्रों के देवता हैं सज्जेश्वर मुर्डेश्वर, धारेश्वर और शुभलिंगेश्वर।

पुराणों में वर्णित त्रिस्थली शिवक्षेत्रों के अन्तर्गत उत्तर की काशी और दक्षिण के रामेश्वर के साथ कर्नाटक के समुद्रतटीय क्षेत्र गोकर्ण का नाम उल्लिखित हुआ है। कदंब राजाओं से लेकर विजयनगर साम्राज्य के शासन काल तक अनेक राजा एवं सामंत इस प्रदेश में स्थित मन्दिरों में विशेष रूप से महाबलेश्वर देवालय में नियमित रूप से नित्यपूजा, उत्सव आदि चलाने के लिए विपुल धनराशि का अनुदान देते रहे। उत्तर में शाल्मली नदी तथा दक्षिण में अघनाशिनी नदी प्रवाहित होकर गोकर्ण क्षेत्र को और भी पवित्र बना रही हैं।

गोकर्ण क्षेत्र में महाबलेश्वर

गोकर्ण क्षेत्र में महाबलेश्वर के आविर्भाव के बारे में कुछ कथाएँ पुराणों में पायी जाती हैं। लंकेश्वर रावण की माता प्रतिदिन समुद्रतट पर बालू से शिवलिंग बनाकर उसकी पूजा करती थी। एक दिन समुद्र की एक ऊँची लहर ने उस शिवलिंग को बहा दिया। तब रावण की वह शिव भक्ता माता चिंतित हो गयी। तब पुत्र रावण माता के दुःख को दूर करने के लिए

कैलास से महान् शक्तिसंपन्न आत्मलिंग को ही लाने की प्रतिज्ञा करके एतदर्थ कठोर तपस्या भी करने लगा। तपस्या के फलस्वरूप परमशिव से उसको आत्मलिंग की प्राप्ति हुई और यह चेतावनी भी दी गयी कि लँका पहुँचने के पहले अगर आत्मलिंग को जमीन का स्पर्श हो जाय तो वह वहीं स्थिर होकर रह जायेगा। रावण भी बढ़ी सावधानी से आत्मलिंग को अपनी हथेली पर ही रखकर गोकर्ण के समुद्रतट आ पहुँचा। इतने में इन्द्रादि देवताओं की कूटनीति से प्रेषित भगवान् गणेश एक ब्रह्मचारी किशोर के रूप में वहाँ उपस्थित हुआ। जब संध्यावन्दन करने का समय हुआ तब रावण ने आत्मलिंग ने उस वेषधारी गणपति के हाथ में सौंपकर सन्ध्यावन्दन करने लगा। इतने में गणपति ने उस लिंग को ज़मीन पर रख दिया और संपूर्ण बल व शक्ति का प्रयोग करने पर भी राक्षसराज रावण उस आत्मलिंग को उठा न सका। पाताल लोक तक जड़े फैलाकर वह शक्तिसंपन्न लिंग वहीं रह गया और महाबलेश्वर के नाम से भक्तजनों की पूजा-आराधना को स्वीकार करते हुए सब पर अनुग्रह करने लगा। यह भी कहा जाता है कि जब रावण ज़मीन पर से आत्मलिंग को न उठा सका तब क्रोधित होकर उसने उस लिंग पर ढके वस्त्र को फाड़कर चारों दिशाओं में फेंक दिया। वस्त्र के ये टुकड़े जहाँ-जहाँ गिरे वहाँ चार लिंग उद्भुत हुए और इस तरह रावण द्वारा भूतल पर पाँच शिवक्षेत्रों की निर्मिति हुई।

गोकर्ण में एक पुरातन मन्दिर में भक्तवत्सल महाबलेश्वर लिंग रूप में विराजमान हैं। गर्भगृह के साठ फुट ऊँचे शिलामय गोपुर पर दशावतार, अष्ट दिक्पालक, शेष नाग आदि के शिल्प उत्कीर्ण हुए है। गर्भगृह के बाहर रंग मण्डप के चारों स्तंभों को षण्मुख, गणपति, दिगंबर, वीरभद्र, नरसिंग, वेणुगोपाल, वृषभारूढ ईश्वर महकालेश्वर, शिवगण कुम्भोदक, महिषासुरमर्दिनी, इत्यादि देवताओं की अति सुन्दर शिल्पाकृतियाँ अलंकृत कर रही हैं। महाबलेश्वर मन्दिर की विशेषता यह है कि यहाँ परमेश्वर आत्मलिंग के रूप में विराजमान होते हुए भी भूमि के

नीचे रहने से वे दृष्टिगोचर नहीं होते। गर्भगृह में तीन फुट के एक चतुरस्त्र शालग्राम पीठ का ही अर्चना, आराधना आदि की जाती है। इसी शालग्राम पीठ के बीच में एक स्वर्णमयी रेखा दिखायी देती है। मध्यभाग में एक छोटा-सा रन्द्र है जिसके अन्दर उँगली चलाने से एक नरम पत्थर का स्पर्श होता है। कहा जाता है कि यही भूमि के अन्दर छिपे महाबलेश्वर का शिरोभाग है। शालिग्राम पीठे के नीचे छः फुट का शिवलिंग रहता है और चालीस साल में एक बार जब अष्टबन्धन का कुम्भाभिषेक आयोजित होता है उसी अवसर पर यह पीठ निकाला जाता है और आत्मलिंगेश्वर के संपूर्ण दर्शन पाने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

इसी मन्दिर के सामनेवाले मण्डप में बायीं ओर गणपति की और दायीं ओर दुर्गामाता की मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित हैं। दुर्गादेवी दक्षिण हस्त में त्रिशूल एवं वामहस्त में खड्ग धारण करके दिव्य सौन्दर्य के साथ आसीन होकर कृपावृष्टि कर रही है।

महाबलेश्वर मन्दिर के निकट ही महागणपति का भी भव्य मन्दिर है। कहा जाता है कि यह उसी गणपति की मूर्ति है जिसने ब्रह्मचारी का रूप धारण करके रावण को प्राप्त आत्मलिंग को छल से भूमि पर रख दिया। क्रोधित होकर लंकेश्वर ने गणपति के मस्तक पर मुष्टिप्रहार करके लंका चला गया। तत्पश्चात् परमशिव ने गणपति को यह वरदान दिया कि गोकर्ण में जो भी भक्त आयेंगे वे सर्वप्रथम गणपति की पूजा करके उनका अनुग्रह प्राप्त करने के बाद ही आत्मलिंग का दर्शन करेंगे। इस तरह महागणपति की यह द्विभुज मूर्ति ही यहाँ अग्रवन्द्य देवता है और इसके सिर पर रावण के मुष्टिप्रहार का भी चिह्न है। इस गणपति की अपार शक्ति और महिमा का यह कारण है कि त्रेतायुगमें लंकाधिपति रावण से लाये गये आत्मलिंग की प्रतिष्ठा इसी गणपति के द्वारा गोकर्णक्षेत्र में तुलामास में मीनलग्न और विशाखा नक्षत्र से युक्त शुभ दिन में हुई।

गोकर्ण क्षेत्र का समुद्रतट तो अत्यंत सुरम्य है और दक्षिण में समुद्र की लहरों के बीच एक छोटा-सा पहाड भी दिखायी देता है जिसके कारण समुद्रतट की शोभा में चार चाँद लग गये हैं। इस रमणीय स्थान में प्रकृतिमाता तो कवियों को और कलाकारों को सौन्दर्य का आनन्द लूटने के लिए आह्वानित करती रहती है। इस जगह पर समुद्र का आकार एक गया के कान (कर्ण) सा है, अतः कहा जाता है कि यह क्षेत्र गोकर्ण नाम से प्रसिद्ध हुआ।

समुद्रतटीय इस पर्वत को शतश्रृंग कहते हैं। पुराणों में कहा गया है कि हिमाचल की पूर्वदिशा के इन्द्रनील शिखर पर भगवान् विष्णु निवास करते हैं; पश्चिम दिशा के कैलास शिखर पर शिवजी का निवास स्थान है तथा इन दोनों के मध्यभाग में स्थित शतश्रृंग के शिखर पर ब्रह्माजी रहते हैं। इस शतश्रृंग के शिखर पर ब्रह्माजी रहते हैं। इस शतश्रृंग पर्वत की महिमा भी स्कन्दपुराण में गायी गयी है। रावणवध के पश्चात् श्रीराम ब्रह्महत्या दोष से मुक्त होने के लिए गोकर्ण में रहकर महाबलेश्वर की आराधना करते रहे। इसके प्रमाण के रूप में शतश्रृंग पर रामतीर्थ नामक एक पुष्करिणी है और इसके पास ही सीता समेत श्रीराम, लक्ष्मण और हनुमान का एक पुरातन मन्दिर भी है।

इसी शतश्रृंग पर्वत पर और उसके आस-पास भी कई पुण्यस्थल हैं जिनका उल्लेख पुराणों में हुआ है। एक बार भूदेवी अराजकता के कारण भू-भार को न सहकर शतश्रृंग पर्वत पर तपस्या करने लगी। परमशिव भी उसकी तपस्या से संतुष्ट हुए। जिस गुफा में भूमिदेवी तपस्या कर रही थी वह 'गोगर्भ' नाम पाकर प्रसिद्ध हुई और श्रद्धायुत भक्तों का विश्वास है कि इस 'गोगर्भ' गुफा में प्रवेश करने से मानव भवताप से मुक्त हो जाता हैं।

गोकर्ण तो ऐसा एक पुण्यक्षेत्र है जिसमें अनेक मन्दिर निर्मित हुए हैं और पुराणों में यहाँ पाये जानेवाले अनेक स्थलों का, तीर्थों का, गुफाओं का नाम उल्लिखित हुए हैं। कामेश्वर, अघनाशिनी नामक नदियाँ,

पांडवाश्रम-कपिलातीर्थ, भूतनाथ का मन्दिर, इन्द्रेश्वर लिंग, उमामहेश्वर का मन्दिर, ब्रह्मेश्वर का देवालय, कमण्डलु तीर्थ, नागेश्वर और नागतीर्थ, कोटितीर्थ, श्री कृष्णापुर मन्दिर, पट्ट विनायक मन्दिर, भद्रकाली मन्दिर इत्यादि गोकर्ण क्षेत्र के विशेष दर्शनीय स्थान हैं। हर एक पवित्र स्थान से कोई न कोई पौराणिक कथा जुडी रहती है।

कूडलि क्षेत्र के मन्दिर

सह्याद्रि पर्वतमालाओं से बहनेवाली छोटी-मोटी सरिताओं से आप्लावित कर्नाटक तो अनेक संगम-स्थलों से पवित्र हो उठा है। सच ही तो है कि इस पुण्यभूमि पर न केवल नदियों के संगम-पाये जाते हैं, अपितु यहाँ विभिन्न धर्मों का, मतों का संप्रदायों का, संस्कृतियों का भी संगम होता आ रहा है। पश्चिम से बहनेवाली तुंगा और पूर्व से प्रवाहित होनेवाली भद्रा इन दोनों नदियों का पवित्र संगम कूडलि नामक प्रशांत शहर के पास पाया जाता है। कूडलि शहर तो नगरों की भीड-भाड और शोरगुल से दूर एक छोटा-सा सुन्दर स्थल है। घने जंगलों से युक्त पहाडों की श्रेणियों से, लताओं से अश्लिष्ट ऊंचे ऊँचे पेडों से, विपुल शस्यों से भरपूर हरेभरे खेतों से, कल-कल बहती नदी-धाराओं से आवृत यह शहर अत्यंत सुहावना है, मन को शांति प्रदान करनेवाला है। तुंगा और भद्रा एक दूसरे से गले मिलकर जिस स्थान से तुंगभद्रा बनकर आगे बढती है उस स्थल के शांतिपूर्ण वातावरण में धर्मालु भक्तजनों को आत्मानुभूति होती है और प्रकृति के दिव्य सौन्दर्य में वे द्वैतामृत का आनन्द लूटने लगते हैं। ऐसा एक पुण्यक्षेत्र 'कूडलि' पुराणों में नरसिंहक्षेत्र नाम से वर्णित है और 'दक्षिण काशी', 'महाप्रयाग' इत्यादि पुरातन नामों से भी प्रसिद्ध हुआ है। इस पवित्र स्थान को नरसिंह क्षेत्र नामांकन के बारे में एक रोचक कथा पुराणों में उल्लिखित है। कहा गया है कि तुंगभद्रा नदी के जलप्रवाह में भगवान् नरसिंह की एक शालग्राम मूर्ति बहती हुई आगेबढ रही थी। परम भक्त प्रह्लाद अपने

इष्टदेव नरसिंह की पूजा की तैयारी करके तट पर बैठा था। नरसिंह की उस दिव्य मूर्ति को प्रवाह में आगे बढ़ते देखकर प्रह्लाद ने भगवान् से पूछा कि जब मैं आपकी पूजा करने के लिए प्रतीक्षा कर रहा हूँ आप कहीं बढ रहे हैं? तब भक्तवत्सल भगवान् नरसिंह ने कहा कि मेरे सिर पर हाथ रखकर यदि मुझे रोक लोगे तो मैं इसी स्थान पर स्थिर होकर रह जाऊँगा। भगवान् के वचनों को सुनकर आह्लादित प्रह्लाद ने वैसा ही किया। भगवान् नरसिंह भी शालग्राम शिला के रूप में उसी स्थान में रह गये और विश्वास किया जाता है कि प्रतिदिन भक्त प्रह्लाद के द्वारा नरसिंह की पूजा-आराधना होती रहती है।

इसी नरसिंह क्षेत्र या कूडलि में एक भव्य मन्दिर में श्री नरसिंह की सुन्दर शालिग्राम मूर्ति विराजमान है। यह मूर्ति इतनी अद्भुत है कि यह किसी साधारण मानव की कलाकृति सी नहीं लगती। भगवान् के हाथ में एक गुन्जाफल और सिर पर प्रह्लादहस्त स्पष्ट दर्शनीय हैं। प्रह्लादहस्त का यह निशान तो इस बात को प्रमाणित करता है कि प्रह्लाद ने नरसिंह भगवान् के सिर को अपने हस्त से दबाकर उन्हें इस पवित्र संगमस्थान पर स्थिर रूप से रहने दिया। इसी मन्दिर में पारिजात का एक वृक्ष है और कहा जाता है कि इसको प्रह्लाद ने ही लगा दिया और इसी वृक्ष के पुष्पों से भगवान् की अर्चना किया करता था। गर्भगृह के बाहर द्वारपालकों की और लक्ष्मीनरसिंह स्वामी की भी भव्यमुर्तियाँ प्रतिष्ठापित हुई हैं।

कूडलि क्षेत्र के नरसिंह (विष्णु) और रामेश्वर (शिव) के ये दोनों मन्दिर अति पुरातन माने जाते हैं। इतिहासज्ञों का कहना है कि ये दोनों मन्दिर होयसल नरेशों ने बनवाये थे। जो भी हो तुंगा और भद्रा नदियों के संगम स्थान पर ये दोनों देवालय शैव और वैष्णव मतों का धार्मिक संगम के प्रतीक के रूप में स्थित हैं।

कूडलि क्षेत्र में श्रृंगेरी महासंस्थान का मठ स्थापित हुआ है जिसके कारण यह स्थल पवित्र तीर्थस्थान बन गया है। तुंगा और भद्रा के संगम से

पवित्रीकृत इस पुण्य स्थल में ब्रह्मदेव की सहदर्मिणी, विद्या और कला की अधिष्ठात्री देवता और जगन्माता श्री शारदादेवी विराजमान होकर भक्तजनों पर कृपावृष्टि कर रही है। शंकर मठ के पास ही श्री शारदांबिका का दिव्य मन्दिर है जिसमें प्रवेश करते ही ज्ञानप्रदायिनी शारदा माता के सान्निध्य में स्त्री-पुरुष भक्ति-परवश हो जाते हैं। श्रृंगेरी क्षेत्र में तो श्री शारदा देवी सिंहासन पर आसीन होकर अपने अपांग वीक्षण से सब को कृतकृत्य बना रही हैं, परन्तु कूडलि क्षेत्र में तो देवी शारदा खड़ी होकर अपने कृपा-कटाक्ष से सबको अनुगृहीत कर रही है। शारदा माता की इस भव्य मूर्ति से जुड़ी एक कथा प्रचलित है। अद्वैत सिद्धान्तों के प्रतिपादक श्री आदि शंकराचार्य ने लोकसंचार करते समय, मीमांसा शास्त्र के पारंगत परम ज्ञानी और तत्त्ववेत्ता मण्डनमिश्र को शास्त्रार्थ में हरा दिया। तब उनकी धर्मपत्नी उभयभारती ने जो सरस्वती देवी का ही अवतार थी ब्रह्मलोक की ओर प्रस्थान करने का निश्चय किया । तब लोकमंगल की कामना से प्रेरित होकर श्री शंकराचार्य लोकमाता को पृथ्वी पर ही स्थिर रखने के सदुद्देश्य से वनदुर्गा महामंत्र का जप करके देवी को रोक दिया। इस महामंत्र के वशीभूत होकर शारदादेवी भी शंकराचार्य की प्रार्थना के अनुसार उनके साथ जाने के लिए सहमत हुई। परन्तु लोकमाता शारदा देवी ने यह शर्त लगायी कि शंकराचार्य के पीछे ही उनका अनुसरण करती हुई वह उनके साथ जायगी परन्तु किसी कारणवश यदि वे मुँह पीछे मोड़कर उसको देखलें तो वह वहीं रुक जायगी। शर्त के अनुसार दोनों निकल पड़े और शंकराचार्य भी देवी की पायल की झंकार सुनते सुनते विश्वास के साथ आगे बढते रहे कि देवी शारदा उनके पीछे आ रही है। परन्तु कूडलि क्षेत्र के पास जब तुंगा और भद्रा के संगम स्थान को पार करना पड़ा तब देवी को पायलो की रुनझुन सुनायी न दी। कारण जानने के लिए उत्सुक होकर शंकराचार्य ने शर्त को भूलकर पीठे मुड़कर देखा। उसी क्षण वाग्देवी शारदा स्थिर होकर वहीं रह गयी और कूडलि क्षेत्र देवी का

परम पवित्र निवासस्थान बन गया। इसी लिए यहाँ के शारदा मन्दिर में देवी की मूर्ति खड़ी ही रहकर दर्शन दे रही है और साधकों को आध्यात्मिक ज्ञान का वरदान दे रही है।

कूडलि क्षेत्र कर्नाटक के शिवमोग्गा जिले के अन्तर्गत है जो नैसर्गिक वैविध्य के लिए प्रसिद्ध है। यहां ऊँचे-ऊँचे शिखरों से युक्त पहाड़ी प्रदेश भी हैं और हरे-भरे समतल मैदान भी पाये जाते हैं। इस जिले के घने जंगलों में तरह-तरह के वन्यमृग और पक्षीसंकुल पाये जाते हैं। प्राचीन काल से ही यह रम्य भूमि ऋषिमुनियों का निवासस्थान बनकर धर्म कला व संस्कृति के विकास के लिए भी अनुकूल वातावरण से संपन्न रहा है जिसके कारण यह पुराण-प्रसिद्ध ही नहीं इतिहास-प्रसिद्ध भी हो चुका है।

बेलूरु व हळेबीडु के मन्दिर

बेलूरु हासन जिले का एक छोटा-सा शहर है। बेलूर और हळेबीडु कर्नाटक के दो इतिहास प्रसिद्ध शहर हैं जो कर्नाटक के ही नहीं अपितु भारत के भी सांस्कृतिक इतिहास में सुवर्णाक्षरों में अंकित हुए है। यही कारण है करीब आठ सौ साल पहले इन नगरों में निर्मित अत्यद्भुत शिल्पसुषमामंडित देवालय तो भारतीय शिल्पकला की गरिमा में निखार पैदा करनेवाले उज्जवल रत्न हैं अमूल्य शिल्पाकृतियों के अखंड भंडार हैं।

चेन्नकेशव के प्रधान मन्दिर के बाहरी प्राचीन को महाभारत, रामायण, भागवतादि पुराणों के दृश्य शोभित कर रहे हैं। इनके अलावा इन प्राचीरों पर चालीस से अधिक शिलाबालिकाओं की प्रतिमाओं में नारी को सौन्दर्यदेवता के रूप में, उसकी विविध भाव-भंगिमाओं को, वेष-भूषा को, केशविन्यास को, विभिन्न हाव-भाव को देख सकते हैं। सौन्दर्य-बोध से संपन्न रसिकजन तो इन शिलाबालिकाओं के सर्वांग लावण्य से मुग्ध होकर इनके सृष्टिकर्ता शिल्पियों की वाद में सिर झुकाते हैं। मणिदर्पण में अपने मुख-सौन्दर्य देखनेवाली युवती, माथे पर सुन्दर तिलक लगानेवाली

ललना, दक्षिण भुजा पर बैठे शुकपक्षी को सहलानेवाली किशोरी, मर्कट से भयभीत बालिका, कंघी से केश संवारनेवाली कामिनी, वेणुवादन करनेवाली वनिता, अपने नृत्य से आकर्षित करनेवाली मोहिनी, रुद्रवीणाधारिणी रमणी, अपने आँचल पर बिच्छू को देखकर चौंकनेवाली तरुणी, इस तरह कर्नाटक के कुशल शिल्पियों ने काले कठोर पत्थरों में नारी की विविध नलिन, मलित और सुन्दर भंगिमाओं का साक्षात्कार करवाया है। इन सभी शिलाबालिकाओं (मदनिकाओं) का संपूर्ण वर्णन करना किसी के वश की बात नहीं। वाणी शब्दहीन हो जाती है, बेचारी लेखनी तो थक जाती है।

बेलूर में चेन्नकेशव नारायण के प्रधान मन्दिर की पश्चिमी ओर कप्पे चेन्निगराय का मन्दिर भी दर्शनीय है। पास ही भगवान् वीरनारायण मन्दिर की बाहरी दीवारों पर अनेक देवताओं की भव्यमूर्तियाँ उत्कीर्ण हुई हैं। इसी शहर के शंकरेश्वर मन्दिर, नंजुण्डेश्वर देवालय, पातालेश्वर और अमृतेश्वर देवालय भी विशेष उल्लेखनीय हैं।

हळेबीडु भी एक इतिहास प्रसिद्ध शहर है जो कर्नाटक के रमणीय मलनाडु (सह्याद्रि पर्वत प्रदेश) के आंचल में स्थित है।)

हळेबीडु के होयसलेश्वर मन्दिर को सन् 1121 में होयसल राजा विष्णुवर्धन के सेनापति केतमल्ल ने बनवाया। इसकी विशेषता यह है कि यहाँ दो देवालय जुड़े हुए हैं। इस जुडुवें मन्दिर में शांतलेश्वर और होयसलेश्वर दो अलग अलग नक्षत्राकार गर्भगृहों में सुन्दर शिवलिंगों के रूप में विराजमान हैं। इन मन्दिरों के बाहरी प्राचीन पर कई समानान्तर शिला पट्टिकाएँ पायी जाती हैं जिन पर विविध प्रकार के शिल्पवैचित्र्य को देखकर दर्शकगण मन्त्रमुग्ध से रह जाते हैं। ये सब बेलूर मन्दिर का अद्भुत शिल्पकला की याद दिलाते हैं।

बेलूर और हळेबीडु में अमर शिल्पियों ने जड़-पत्थरों में अपनी कल्पना को रूप देकर शिल्पाकृतियों में जीवन भरकर उन्हें भी अमर बना

दिया है। इन शिल्पों के दर्शन से आनन्द, चिंतन से आनन्द, वर्णन से आनन्द मिलता है। उनके बारे में लिखने से तो दुगुना आनन्द मिलता है। अपनी शिल्पसृष्टि को अपने ही सृष्टिकर्ता परमात्मा को समर्पित करके उसकी मूलशक्ति में अपने को विसर्जित करके अपने नाम व अस्तित्वव को प्रकट किये बिना त्याग-ज्वलाओं के रूप में देदीप्यमान इन शिल्पियों का सादर नमन करना क्या हम कलाप्रेमियों का कर्तव्य नहीं है।

कुम्भासी तथा नारायण के मन्दिर

कर्नाटक के समुद्रतटीय सप्त पुण्यक्षेत्रों में शंकरनारायणपुर भी एक है जो पौराणिक काल में क्रोडपुर नाम से प्रसिद्ध था। देश भर में भगवान् विष्णु और शिव की श्रेष्ठता को लेकर वैष्णव और शैव भक्तों में जब वाद-विवाद के बीच भेदभाव पनपता रहा तब पुण्य प्रदेश कर्नाटक के भक्तगण समन्वयात्मक दृष्टिकोण से प्रेरित होकर भक्तिक्षेत्र में हरि ओर हर के भेदभाव को दूर करके दोनों मतो में एकता स्थापित करने में प्रयत्नशील रहे। फलस्वरूप क्रोडपुर में शंकरनारायण के मन्दिर का निर्माण विशिष्ठता यह है कि इसके गर्भगृह में शंकर और नारायण (शिव व विष्णु) दोनों दो लिंगों के रूप में एक साथ विराजमान होकर शैव और वैष्णव भक्तों को अनुगृहीत कर रहे हैं। सह्याद्रि पर्वतमालाओं की पत्यका में स्थित इस पावन क्षेत्र में क्रोड महर्षि ने कठोर तपस्या करके शंकर नारायण की कृपा प्राप्त की जिसके कारण यह क्रोडपुर या क्रोडयोगीश्वर-क्षेत्र के नाम से विख्यात हुआ।

सत्यनारायण, कुम्भासी और कोटेश्वर के ये तीनों मन्दिर धार्मिक क्षेत्र में कर्नाटक जनता की समन्वय-भावना एवं उदार दृष्टिकोण के प्रतीक हैं।

गवि गंगाधरेश्वर का मन्दिर

कर्नाटक की राजधानी बेंगलूरु उँचे-ऊँचे वृक्ष और वल्लरियों से चित्रित, रंग-बिरंगे खुशबूदार सुमनों से सुवासित, हरे-भरे वन-उपवनों से सुशोभित, तरह-तरह के खग-संकुलों से कूजित एक रमणीय उद्याननगरी ही नहीं अपितु पुरातन काल से ही अनेक देवालयों से पवित्रीकृत पुण्य नगरी भी है। हरियाली से भरपूर यह नगरी आठ सौ वर्ष पूर्व के इतिहास से संपन्न है और संस्कृत ग्रन्थों में यह कल्याणनगरी कही गयी है। होयसल नरेश वीर बल्लाल के काल में यहाँ बेन्दकालूरु नामक एक छोटा-सा गाँव था। यहाँ के प्रभुओं की परंपरा में उत्पन्न केम्पेगौड नामक वीर सामन्त ने स्वप्न में प्रेरित होकर इसी प्रदेश में एक विशाल नगर का निर्माण करके उसको बेंगलूरु नाम से विभूषित किया। प्राचीन काल से ही इस कल्याण नगरी में राजाओं द्वारा अनेक मन्दिरों का निर्माण होता रहा। ऐसे ही पुरातन मन्दिरों में गवि गंगाधरेश्वर स्वामी का देवालय भी प्रसिद्ध है। यह एक गुफा-मन्दिर है जो बेंगलूर नगर के नैऋत्य भाग में स्थित होकर सारे प्रदेश को पवित्र बना रहा है।

गंगाधरेश्वर का यह गुफ़ा-मन्दिर दक्षिणाभिमुख है। उत्तर की ओर से पहुँचते समय एक ऊँचा पथरीला टीला ही दिखायी देता है और कुछ ऊँचाई तक सीढ़ियों पर चढ़ने से ही मन्दिर के प्रवेशद्वार तक पहुँच सकते हैं। दक्षिण में इस देवालय का प्रधान प्रवेश द्वार है। इस प्रवेशद्वार के साथ मन्दिर के बाह्यवरण के पत्थर की दीवारें साधारण सी हैं और टूटीफूटी हैं। हैं। परन्तु इस द्वार से होकर अन्दर प्रवेश करते ही ऐसा लगता है कि हम परमशिव की ही दिव्य लीलाभूमि तक पहुँच गये है जहाँ परम कृपालु भोलानाथ ईश्वर का साक्षात्कार अवश्य होगा। बाहरी आँगन के मध्यभाग में तीस फुट ऊँचा द्वजस्तंभ भक्तजनों को आह्वानित करके यह घोषित करता है कि इस पवित्र स्थल में साक्षात् परमशिव गंगाधरेश्वर लिंग के रूप में विराजमान होकर सबको अपने वरदान से अनुगृहीत कर रहे हैं।

ध्मजस्तंभ पीतल के पर्तों से ढका हुआ है और इसके दोनों ओर की वेदिकाओं पर करीब तीस फुट ऊँचाई के त्रिशूल स्तंभ और डमरू-स्तंभ स्थापित कर दिये गये हैं। डमरूस्तंभ के पास ही पूर्वदिशा की ओर सूर्यस्तंभ और त्रिशूलस्तंभ के पास पश्चीम में चन्द्रस्तंभ दर्शनीय हैं। इस तरह मन्दिर के मुख्य द्वार को पार करते ही शिव के मुख्य लाञ्छन त्रिशूल, डमरू, चन्द्र व सूर्य के दर्शन होते हैं। इन चारों स्तंभों में तो शिल्पकला की अद्भुत कारीगरी दृष्टिगोचर होती हैं। सूर्य और चन्द्र स्तंभों के ऊपरी भाग में दोनों ओर नन्दी की छोटी-छोटी दो सुन्दर आकृतियाँ उत्कीर्ण हुई हैं। इन स्तंभों के बीच में ध्वजस्तंभ की वेदिका पर एक छोटे शिलामंडप में शिव के प्रियवाहन नन्दी की एक भव्य मूर्ति प्रतिष्ठापित हुई है। इसके गले पर और पीठ पर छोटी छोटी घण्ठियों तथा आभूषणों को उत्कीर्ण करके शिल्पियों ने अपनी कर कुशलता प्रदर्शित की है। ध्वजस्तंभ के निचले भाग चारों ओर शिल्पातियाँ दर्शनीय हैं। मन्दिराभिमुख होकर गणेश की एक सुन्दर मूर्ति बनायी गयी है। पूर्वभाग में शिव की मूर्ति वीरभद्र के रूप में अंकित हुई है। कमलपुष्प पर लंबी मूंछ के साथ वीरभद्र चतुर्हस्तच होकर पाश, खड्ग आदि धारण करके खड़े हैं और उसके पास ही मनुष्य की आकृति में नन्दी हाथ जोड़कर विनयपूर्वक खड़ा है। पश्चिमी भाग में सर्वालंकृत नन्दी की पीठ पर प्रभावलि के नीचे एक भव्य शिवलिंग उत्कीर्ण हुआ है। इस के दोनों ओर चन्द्र और सूर्य भी दृष्टिगोचर होते हैं।

मन्दिर के प्रधान मण्डप से होकर आगे बढ़ने से एक विशाल गुफा का द्वार मिलता है। गुफा के अन्दर श्री गंगाधरेश्वर का गर्भगृह है यहाँ गंगाधरेश्वर काले पत्थर के उन्नत शिव लिंग के रूप में विराजमान होकर पुरातन काल से आज तक लोगों की इष्टकामनाओं की पूर्ति करते आ रहे हैं। गर्भगृह लिंग के सामने ही नन्दी का भी विग्रह दर्शनीय है। विशेषता यह है कि शिवलिंग व नन्दी दोनों एक ही शिला में निर्मित हैं। पौराणिक कथा के अनुसार यह विश्वास किया जाता है कि परमशिव यहाँ सर्वकलुषनाशिनी

गंगा को अपने पास ही रखते हैं और इसीलिए वे गंगाधरेश्वर नाम से सब के लिए परम पूजनीय बन गया है। इस लिंगमूर्ति की और एक विशेषता यह है कि उसका प्रणाल दक्षिण की ओर बनाया गया है। सामान्य रूप से शैवमन्दिरों में शिवलिंग का प्रणाल बायीं तरफ ही रहता है। गंगाधरेश्वर स्वामी की महिमा का कारण यह भी है कि प्राचीन काल में परम तपस्वी गौतम ऋषि इसी गुफा में रहकर गंगाधरेश्वर लिंग को त्रिकाल-पूजा करते थे। बेंगलूर के इस पवित्र भूभाग को गौतम क्षेत्र भी कहा करते थे। नैसर्गिक सुषमा के बीच प्रशान्त वातावरण में स्थित इस प्रदेश को अनेक ऋषि-मुनियों ने अपनी तपोभूमि बना लिया था। कहा जाता है कि भारद्वाज मुनि ने भी इसी गुफा में तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की।

अधिकांश देवालयों में शिवलिंग के गर्भगृह की बायीं ओर ही देवी पार्वती का गर्भगृह रहता है। इस मन्दिर में त्रिलोकमाता पार्वती देवी शिव की दायीं तरफ के पूजागृह में आसीन होकर प्रसन्न वदन से युक्त होकर अपने करुणा-कटाक्ष से दर्शकों को अनुगृहीत करती है। वैसे तो इस गुफा में प्रवेश करके उसकी छत को हाथों से छू सकते हैं। गुफा की चट्टानमय छत से कहीं कहीं पानी की बूँदे टपकती रहती हैं। पार्वती देवी के गर्भगृह तक पहुँचने के लिए दर्शकों को कुछ झुककर ही जाना पड़ता है।

बेंगलूर नगर में कई पहाड़ी प्रदेश पाये जाते हैं, अतः स्थान मान पर ऊँची ऊँची चट्ठानें और पथरीली ज़मीन भी रहती है। नगर के दक्षिणी भाग में 'ब्यूगल राक' (कहले गोपुर) के नाम से एक छोटा-सा पहाड़ है जिसपर पल्लव काल के पणपति का एक मन्दिर निर्मित है। इस देवालय में आठ पुट ऊँची गणपति की अत्यंत सुन्दर मूर्ति एक उन्नत चट्ठान पर उत्कीर्ण हुई हैं। कहा जाता है कि पहले इस मूर्ति के ऊपर कोई छत नहीं थी और केम्पेगौड ने इसके लिए गर्भगृह बनाकर मुख-मंडप का भी निर्माण किया। कुछ भक्तजनों का विश्वास है कि गणपति की यह आकृति स्वयं व्यक्त हुई और कालक्रम से वह बड़ती जा रही है। इस प्रदेश में माण्डव्य ऋषि का

आश्रम था और यहीं वे तपश्चर्या करते रहे। इसीलिए यह पहाड़ी प्रदेश माण्डव्य क्षेत्र कहलाता है। श्री श्रृंगेरी जगद्गुरु श्री मदभिनव विद्यातीर्थ स्वामी के करकमलों से इस गणपति मन्दिर का जीर्णोद्धार भी हुआ और नूतन गोपुर का भी निर्माण हुआ। बेंगलूरु निवासियों का दृढ़ विश्वास है कि यह गणपति भक्तवत्सल है और भक्तजनों की मनौतियों की पूर्ति करते हैं।

मुलबागलु के मन्दिर

मुलबागलु कर्नाटक के इतिहास-प्रसिद्ध पुण्यस्थलों में एक है तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में भी अत्यन्त महत्व का है। इस क्षेत्र संस्कृत शिक्षा के लिए प्रधान केन्द्र था। ऐसा कहा जाता है कि एक विश्वविद्यालय भी स्थापित हुआ था। इतिहासज्ञों के अनुसार यह नगरी विजयनगर साम्राज्य की दूसरी राजधानी थी। मुलबागलु क्षेत्र में कई मन्दिर हैं जिनमें से श्री वीरांजनेय आज यह मंदिर भग्नावशेष हुआ है।का पुरातन देवालय विशेष उल्लेखनीय है। इस विशाल मन्दिर में श्री हनुमान स्वामी की गंभीर बृहदाकृति का दर्शन मिलता है। दायें हाथ को ऊपर उठाकर वीरता की मूर्ति बनकर हनुमान यहाँ विराजमान होकर भक्तजनों के संकटों का नाश करके उनपर कृपा-वृष्टि कर रहे हैं। हनुमान की यह शिलामूर्ति अत्यंत पुरानी दीखती है और कहा जाता है कि कुरुक्षेत्र के मुलबागल शहर में विरूपाक्षेश्वर का मंदिर भी विशेष है। युद्ध के समय में श्रेष्ठ अर्जुन के रथ की ध्वजा पर यह वीरांजनेय विराजमान थे। कृष्ण के आदेशानुसार, अर्जुन ने उस मूर्ति के प्रतिष्ठा मुलबागल में की और पूजा की व्यवस्था भी की। आज भी इस मूर्ति के कमर में तलवार सुशोभित है। अत्याचार ता दमन अधर्म का नाश करना अन्याय का सामना करो की शक्ति प्रधान होती है।

मुलबागल की वायव्य दिशा में छः मील की दूरी पर 'कूडुमले' नामक एक छोटा पहाड है। यहाँ तीन-चार छोटी-छोटी पहाड़ियाँ मिलकर रहती हैं गणपत की मूर्ति की स्थापना स्वयं शिव ने प्रतिष्ठा की। दिव्य

सौन्दर्य से भक्त जन और अलौकिक शक्ति से वशीभूत कर देते हैं। गणपति की यह बृहदाकार मूर्ति तो प्रणवमत्र के दिव्य प्रतीक के रूप में विराजमान है और ऐसा लगता है कि समस्त चराचर विश्व ही इस मूर्ति में समा गया है। भावुक भक्तों को इस मूर्ति के दर्शन से ब्रह्मानुभूति का दिव्यानन्द प्राप्त होता है।

काडुमले के गणपति मन्दिर के वामभाग में श्री सोमेश्वर का एक मन्दिर है। मन्दिर में प्रवेश करते ही बाहरी प्राकार में गणपति की कृष्णशिला की एक बड़ी प्रतिमा सबका स्वागत करती है। यह प्रतिमा इसलिए विशिष्ट है कि पत्थर के छोटे टुकड़ों से इस के विभिन्न अंगों पर पीटने से संगीत के अलग अलग स्वर सुन सकते हैं।

मुलबागलु के दक्षिण में सात मील की दूरी पर आवणि नामक एक पुण्य क्षेत्र है जिसके पास एक छोटा पहाड़ भी है। इस पर सीता-पार्वती का एक प्राचीन देवालय है। कहते हैं कि इसी जगह पर सीतामाता, पार्वती की पूजा किया करती थी और यहीं लव-कुश का जन्म भी हुआ था और वाल्मीकि ऋषि के स्नेह भरे आश्रय में उनका पालन पोषण हो रहा था।

बैन्दूर के मन्दिर

ऐतिहासिक महत्त्व का एक सुन्दर प्रशांत शहर 'बैन्दूर' जो पुराणों में बिन्दुपुर नाम से वर्णित है। यह पुण्यस्थल सेनेश्वर के कलापूर्ण मन्दिर के कारण अत्यंत प्रसिद्ध हुआ है। इस पुरातन और भव्य मन्दिर में पायी जानेवाली शिलामूर्तियाँ तो कर्नाटक की प्राचीन शिल्पकला के अमूल्य नमूने माने जाते हैं। कहा जाता है कि बैन्दूर का यह मन्दिर त्रेतायुग के वृत्तान्तों से संबन्धित है। वैसे तो कर्नाटक के अधिकांश प्राचीन मन्दिर किसी पौराणिक कथा से जुड़े रहते हैं।

बैंदूर के सेनेश्वर का यह देवालय ऐतिहासिक महत्त्व से भी संपन्न है। कहा जाता है कि ग्यारहवीं शताब्दी में चालुक्यों का सेनावर नामक

सामंत इस प्रदेश में राज्य कर रहा था और उसी ने सेनेश्वर देवालय का निर्माण किया। इतिहासज्ञों का कहना है कि ग्यारहवीं शताब्दी में सेनवंश के राजाओं ने कर्नाटक से उत्तर बंगाल में जाकर राज्य किया है। इसके पहले के कर्नाटक के कुन्दापुर के तालुक सेनापुर में रहकर शासन करते रहे। इसी राजवंश के जीमूतवाहन नामक राजा ने सेनेश्वर देवालय बनवाया। जो भी हो सेनेश्वर देवालय पुराण प्रसिद्ध भी है और इतिहास-प्रसिद्ध भी।

सेनेश्वर मन्दिर के मध्य भाग को शिव के ताण्डवनृत्य का शिल्प शोभित कर रहा है। मण्डपों में सूर्यनारायण, महाविष्णु, सप्तमातृकाएँ, बलमुरि गणपति (दायीं और सूँड मुडी हुई गणपति) महिषासुर मर्दिनी, सुब्रह्मण्य, शंकरनारायण आदि देवताओं के दिव्य विग्रह प्रतिष्ठित हैं। शुकनासी के द्वार पर शूलपाणि और परशुपाणी नामक दो द्वारपालकों की मूर्तियाँ गंभीरता से खडे होकर गर्भगृह की रक्षा कर रही हैं। शुकनासी में वानरसेना से निर्मित सरस्वती देवी की प्रतिमा भी प्रतिष्ठापित है जिसकी आँखें अब तक बन्द ही रहकर ज्योतिहीन हैं। सेनेश्वर मन्दिर में पायी जानेवाली विविध देवी-देवताओं को शिलामूर्तियों में इतनी चिकनाई और नरमी है और दर्शकों को ऐसा लगता है कि यहाँ पत्थर भी मक्खन बन गये हैं।

बेंगलूरु मल्लेश्वरम् के मंदिर

उद्यान नगरी बेंगलूर के उत्तरी भाग में मल्लेश्वरम नामक एक सुन्दर विस्तार (Extension) है जो मध्यवर्गीय सुशिक्षित सुसंस्कृत लोगों से आबाद है। चारों ओर हरीतिमा से आवृत (आजकल तो ऊँची इमारतों से आवृत) मल्लेश्वरम में अत्यंत पुरातन एक भव्य शिवालय पाया जाता है। जिसमें श्री मल्लिकार्जुनेश्वर शिवलिंग के रूप में विराजमान होकर भक्तों को अनुगृहीत कर रहे हैं। नग़र की कोलाहलपूर्ण भीड़-भाड़ के बीच में स्थित यह मन्दिर ऐतिहासिक महत्व से संपन्न है। इस पुरातन मन्दिर में उपलब्ध कुछ कागदपत्रों तथा इसकी बाहरी आवरण के एक मण्डप में

स्थापित शिलालेख से बेंगलोर नगर से संबन्धित कई ऐतिहासिक तथ्य भी प्रकट होते हैं।

लोगों का विश्वास था कि मल्लिकार्जुन स्वामी ही लिंग के रूप में आविर्भूत हुए हैं। उस ज़माने से लेकर आज तक भक्तगण बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ मल्लिकार्जुन स्वामी की पूजा करते आ रहे हैं। इस देवता को काडु मल्लेश्वर भी कहते हैं क्यों कि अरण्य के बीच में यह लिंग पाया गया था।

मल्लिकार्जुन स्वामी के गर्भगृह की दायीं तरफ लोकमाता भ्रमरांबा का गर्भगृह है। इस में ममतामयी लोकमाता भक्तों पर कृपाष्टि करने के लिए खड़ी रहकर सबको दर्शन-भाग्य प्रदान कर रही है। देवी भ्रमरांभा की चारफुट ऊँची इस मूर्ति के आगे एक पीठिका पर शास्त्रोक्त रीति से श्रीचक्र अंकित हुआ है और प्रतिदिन कुंकुम आदि मंगल द्रव्य से इसकी अर्चना की जाती है। भक्तजनों का यह दृढ़ विश्वास है कि श्रीचक्र समेत चतुर्भुज धारण करके विराजमान होनेवाली भ्रमरांबा देवी की श्रद्धा के साथ पूजा करने से सकल इष्टार्थ-सिद्धि प्राप्त होती है।

मल्लेश्वरम विस्तार में और कुछ मन्दिर हैं जौ अधिक पुरातन नहीं है। श्रीवैष्णव संप्रददाय के भक्तों द्वारा निर्मित वेणुगोपाल स्वामी का मन्दिर विशेष उल्लेखनीय है। इस विशाल मन्दिर में दक्षिणी शैली में निर्मित दो सुन्दर गोपुर हैं जिनमें देवी देवताओं की सुन्दर मूर्तियाँ अंकित हुई हैं। ध्वजस्तंभ को पार करके प्रवेश करने से गर्भगृह दृष्टिगोचर होता है। इसमें श्री वेणुगोपालकृष्ण मुरली बजाते हुए दर्शन देते हैं। कृष्णशिला की यह मूर्ति सब शुभलक्षणों से युक्त होकर अत्यंत मनमोहक है। ऐसा लगता है कि श्रीकृष्ण अपनी मुरली की स्वरलहरियों से सबको मोहित कर रहा है। इसी वेणुगोपालस्वामी के गर्भगृह की दोनों ओर श्रीदेवी और भूदेवी के पूजा-स्थान हैं। मन्दिर के प्रधान मण्डप में श्रीरामानुजाचार्यय, गरुड और

कृष्णभक्ता आण्डाल के पूजागृह भी हैं। मार्गशीर्ष महीने में यहाँ विशेष उत्सव मनाये जाते हैं।

मल्लेश्वरम विस्तार में कन्निकापरमेश्वरी का देवालय भी भक्तों के लिए एक विशेष आकर्षक केन्द्र है। पार्वती माता कन्यका परमेश्वरी के सुन्दर रूप में खड़ी होकर सबको आह्लादित कर रही है। काडु मल्लेश्वर मन्दिर के पास ही लक्ष्मी नरसिंह स्वामी का देवालय भी दर्शनीय है। लक्ष्मी नरसिंह स्वामी देवालय के बाजू में देवी गंगम्मा का मंदिर है। यहाँ अत्यन्त सुन्दर और देदीप्यमान से युक्त देवी की मूर्ति है। नवरात्री में हर दिन विशेष अलंकार से देवी अद्वितीय सुन्दर रूप से विराजमान है।

इस तरह बेंगलूरु केवल उद्यानों का ही नहीं परन्तु मन्दिरों का भी नगर है। ग्राम देवता के रूप में अन्नम्मादेवी का मंदिर है। प्राकृतिक सुषमा के बीच यहाँ के लोगों में धार्मिक भावना भी पनपती आ रही हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि विज्ञान के क्षेत्र में यद्यपि मानव आगे बढ़ता ही जा रहा है फिर भी उस अलौकिक परोक्ष शक्ति के प्रति उसकी श्रद्धा अखंड रहेगी।

बेंगलूर केवल उद्यान नगर ही नहीं बल्कि पूर्ण रूप से धार्मिक मंदिरों से आवृत्त है। तीन-चार सौं से ज्यादा मंदिरों कर्नाटक के गाँव-गाँव में निर्मित हुए हैं। हर मंदिर की कोई न कोई विशेषता होती है। देहाती लोग पुरातन काल से ही अपनी अपनी जाति कुल के आराध्य देवताओं की पूजा-आराधना आज तक करते रहते हैं। जटक जैसे कुल देवताओं की मूर्तियों को मन्दिरों में प्रतिष्ठापित करके श्रद्धा के साथ उनके उत्सव भी मनाते हैं। श्रावण, कार्तिक आदि महीनों में ग्रामदेवताओं की उत्सवमूर्तियों को पासवाले शहरों में लाकर उत्सव मनाते हैं। कर्नाटक के गाँवों में पाये जानेवाले ये मन्दिर यहाँ के सीधे-सादे सरल स्वभाव वाले लोगों को ही श्रद्धा, भक्ति व संस्कृति-प्रेम के प्रतीक हैं।

बेंगलोर शहर के इस धर्मराय स्वामी मन्दिर के मूलदेवता यद्यपि धर्मराज युधिष्ठिर माने जाते हैं फिर भी आदिशक्ति को ही यहाँ प्रामुख्य दिया जाता है और शक्ति स्वरूपिणी द्रौपदी परम पूज्य मानी जाती है।

धर्मराज मन्दिर में हर साल विविध प्रकार के उत्सव मनाये जाते हैं जिनमें से सर्वप्रिय एवं लोकप्रसिद्ध है 'करग महोत्सव'। विश्वास किया जाता है कि महाभारत काल में यह उत्सव मनाया गया जब पांडव और कौरवों के बीच कुरुक्षेत्र में अठारह दिनों तक महायुद्ध हुआ। परंपरागत यह उत्सव बेंगलूरु नगर में श्रद्धा, भक्ति और उत्साह के साथ हर साल चैत्र महीने में पूर्णिमा की रात मनाया जाता है। इस उत्सव की विशेषता यह है कि इसमें भाग लेनेवाले भक्तों में महाभारत के युद्धवीरों का जोश पैदा हो जाता है।

कटीलु क्षेत्र के मन्दिर

श्रीक्षेत्र कटीलु में नन्दिनी नदी के बीच निर्मित दुर्गादेवी के इस विशाल देवालय के प्रदक्षिणा-पथ में सुन्दर वसन्त मण्डप है जिसमें हर साल वसन्तऋतु में उत्सव मनाया जाता है। इसी प्राकार में महागणपति, वनशास्ता देवता और नागदेव के अलग अलग गर्भगृह हैं। प्राकार में चारों ओर सुन्दर वेदिकाएँ हैं जिनमें कटीलु क्षेत्र के माहात्म्य से संबंधित जानेवाले 'दशावतार मेला' आदि यक्षगानों का उद्गम स्थान कटीलु का दुर्गापरमेश्वरी का मन्दिर ही है। देवी को सुगन्धित पुष्प भी अतीव प्रिय होने के कारण दूर दूर के ग़ाँवों से भी भक्तगण आकर देवी को पुष्पालंकारों से सजाकर कृतकृत्य होते हैं। मन्दिर के पूर्व की ओर एक टीले पर अरुणासुर के खड्ग से विघटित एक लिंग है। दक्षिण में अरुणासुर पहाड़ है। कहा जाता है कि इसी पहाड़ पर उस दानव का दुर्ग था, अब उसके भग्नविशेष ही पाये जाते हैं।

कटीलु क्षेत्र में हर साल धूम-धाम से देवी का उत्सव मनाया जाता है। लाखों की संख्या में भक्त लोग उत्सव में भाग लेकर कृतकृत्य होते हैं। नृत्य, नाटक और संगीत आदि कलाओं को प्रदर्शित करने का सुअवसर भी लोगों को प्राप्त होता है। दुर्गा परमेश्वरी की महिमा ऐसी है कि न केवल धर्मालु भक्त अपितु आबालवृद्ध कलाकार और रसिकगण भी देवी के दर्शन से परमानन्द का अनुभव करते हैं।

शिरसि मारिकांबा मन्दिर

पश्चिमी समुद्रतटीय जिला उत्तर कन्नड़ (कारवार) भी मनोरम कर्नाटक के अति रमणीय प्रदेशों में एक है। शिरसि नामक एक छोटा-सा पुण्यस्थल स्थित है।

लोगों का दृढ़ विश्वास है कि सर्वशक्तिमयी भुवनेश्वरी देवी ही मारिकांबा के रूप में शिरसि शहर में विराजमान होकर अपनी स्नेहछाया में आर्त, दीन, दुःखी लोगों को समेटकर बड़े वात्सल्य के साथ उनके कष्टों का निवारण कर रही है। इसी शहर के चारों ओर अनेक प्राचीन शक्ति-स्थल पाये जाते हैं, जैसे गोकर्ण में भद्रकाली, श्रृंगेरी में शारदा देवी, चन्द्रगुत्ति क्षेत्र में रेणुकांबा, कोल्लरु में कुछ घटनाएँ चित्रित हुए हैं। दर्शकों के लिए ये सुन्दर चित्र अत्यंत आकर्षक हैं। इस मन्दिर की विशेषता यह है कि यहाँ पुरातनता और नूचनता का सरस संगम पाया जाता है। शुचित्व को ही ईश्वर माननेवाले भक्तगण मन्दिर के आवरण और प्रकारों को शुभ्र और शुद्ध रखते हैं। मूकांबिका आदि के शक्तिपीठ स्थापित हुए हैं। शिरसि में मारिकांबा देवालय को भी एक प्रमुख शक्तिस्थल होने का गौरव प्राप्त हुआ है क्यों कि यह देवी भक्तों की अभिमानी देवता मानी जाती है और वह किसी भेदभाव के बिना आबालवृद्ध स्त्रीपुरुष, सभी जाति और धर्मावलंबियों को अपनानेवाली जगन्माता है।

शिरसि का मारिकांबा देवालय धार्मिक दृष्टि से ही नहीं अपितु सांस्कृतिक, सामाजिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। शिरसि की मारिकांबा सौभाग्य की देवता है और शहर की परम अधिष्ठात्री देवता है। उत्सवों के समय में लाखों स्त्रीपुरुष भक्तजन दर्शनार्थ एकत्रित होते हैं। देवी तो कला और विद्या की अधिष्ठात्री भी है अतः नवरात्रि जैसे त्योहारों के संदर्भ में नृत्य, संगीत, चित्र, रंगोलिकला, आदि विविध प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती हैं। विद्यार्थियों में वाग्स्पर्धाएँ भी होती हैं। सन् 1935 में शिरसि में गांधीजी का आगमन हुआ और अहिंसावादी इस महापुरुष से प्रभावित होकर मारिकांबा के मन्दिर में पशुबलि की प्रथा सदा के लिए बन्द कर दी गयी। इतिहास बताता है कि भारत के स्वातंत्र संग्राम के समय यह सत्याग्रहियों का मुख्य केन्द्र और आश्रय स्थान रहा। सर्वशक्तिमती मारिकांबा देवी के सान्निध्य में की गयी प्रार्थना अनुसुनी नहीं रह जाती। यह पवित्र देवालय उन मन्दिरों में गणनीय है जो भक्ति-भावना के साथ जनता में समन्वय का भावना को भी उत्तेजित करके भक्तों को देशकल्याण की ओर प्रवृत्त कर देते हैं।

इडगुंजी और गणक्षेत्र

कर्नाटक राज्य के नैसर्गिक सुषमा से सुसंपन्न समुद्रतटीय प्रदेशों को अनेक दिव्य देवालयों ने पवित्र बना दिया है। इनमें से उत्तर कन्नड़ जिला का इडगुंजी नामक पुण्यधाम तो लाखों भक्तों को आकर्षित करता रहता है। विघ्नविनाशक, आशुवरदायक, परम भक्तवत्सल श्री महागणपति का भव्य मन्दिर ही इस क्षेत्र में आकर्षण का प्रधान केन्द्र है। इडगुंजी या इडागुंजी नामक इस महाक्षेत्र में इष्टार्थप्रद भगवान् विघ्नेश्वर आराध्य देवता बनकर विराज रहे हैं। अन्य पुण्यक्षेत्रों की भाँति इडगुंजी भी पौराणिक कथाओं से जुड़ा हुआ है। पुराणों में यह इडागुञ्जवन या गुञ्जवन

कहा गया है जो त्रेतायुग में ध्यान, तपस्या आदि के लिए सब तरह की सुविधाओं से संपन्न होकर ऋषि-मुनियों का आश्रयस्थल रहा।

इडगुंजी के अति भव्य मन्दिर में भक्तों का विघ्नहर महागणपति ठोस शिलामूर्ति के रूप में विराजमान हैं। पत्थर की एक वेदिका पर द्विभुज मूर्ति खड़ी है। मोदकप्रिय गणपति एक हाथ में मोदक का पात्र और दूसरे हाथ में कमलपुष्प के साथ प्रसन्नवदन होकर दर्शन दे रहे हैं। उत्तम वस्त्र और अलंकारों से विभूषित इस दिव्य मूर्ति के सिर पर किरीट नहीं है। सिर के ऊपरी भाग में हाथी का कुंभस्थल स्पष्ट दिखी देता है और ऐसा लगता है कि एक हाथी ही गर्भगृह में खड़ा हुआ है। गजानन मूर्ति के सिर पर सहस्रदल कमल अंकित हुआ है। छोटी-छोटी घंटियों का हार तथा अन्य आभरणों से अलंकृत गणपती की यह शिलामूर्ति दर्शकों के मन में भक्तिभाव जगाती है। गजमुख की सूँड तो दायें हाथ के मोदकपात्र में निक्षिप्त है। शिवरात्रि के पुण्य पर्व पर इस मन्दिर में अपार भीड़ जम जाती है। वार्षिक उत्सवों के अतिरिक्त सत्यगणपति व्रत, चन्दनाभिषेक, गणहोम, तुलाभार इत्यादि विशेष धार्मिक कार्य इस मन्दिर में संपन्न होते हैं। कार्तिक पूर्णिमा के दिन लक्षदीपोत्सव शास्त्रोक्त रीति से मनाया जाता है। लक्ष दीपों के उज्ज्वल प्रकाश में गणपति की दिव्यमूर्ति इस तरह चमकती रहती है मानों साक्षात् विघ्नविनाशक गणपति ही गर्भगृह में खड़े होकर दर्शकों को वरदान बाँट रहे हैं।

ऐहोळे के देवालय-समूह

कर्नाटक के बिजापुर जिला में स्थित है ऐहोळे नामक एक छोटा-सा गाँव। ऐहोळे एक छोटा गाँव होते हुए भी ऐतिहासिक दृष्टि से यह महत्त्व संपन्न है। शिला-लेखों से पता चलता है कि प्राचीन काल में यह स्थान अय्यवोले, आर्यपुर, ऐवल्ली इत्यादि नामों से प्रसिद्ध था। इस गाँव के आस-पास के पहाड़ी प्रदेशों में ऐसे कितने ही स्थान पाये जाते हैं जो

प्रागैतिहासिक कालीन निवासियों से आबाद रहा करते थे। इस गाँव के कुछ देवालयों के चारो ओर की गई खुदाई से प्राचीन काल की ईट की इमारतें, मिट्टी के बर्तन, औज़ार आदि उपलब्ध हुए हैं। पुरातत्ववेत्ताओं का कहना है कि ये चालुक्यवंश के राज्यकाल के पूर्व के नमूने हैं। जो भी हो बादामी चालुक्यों के शासनकाल में यह एक प्रमुख नगर था प्रमुख व्यापार-केन्द्र भी था। तब से करीब बारहवीं शताब्दी तक विभिन्न राजवंशों के कलाराधक शासकों के द्वारा इस स्थल पर अनेक मन्दिर बनवाये गये। ऐहोळे के देवालयों का महत्त्व इसलिए अधिक है कि यहाँ प्राचीन काल के कई शिलालेख उपलब्ध हुए हैं जो कर्नाटक के ही नहीं अपितु भारत के इतिहास, कला और संस्कृति पर प्रकाश डालते हैं। उस ज़माने में ऐहोळे एक अग्रहार था जिसमें पाँच सौ विप्रकुल रहते थे। आज यह कर्नाटक का मुख्य प्रवासी स्थल है और भारतीय इतिहास, संस्कृति और कला के छात्रों के लिए एक मुख्य संशोधन-केन्द्र है।

ऐहोळे कर्नाटक के उन सुप्रसिद्ध क्षेत्रों में गण्य है जिनका उल्लेख भारतीय कला के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में किया गया है। यह छोटा गाँव प्राचीन काल के अत्यद्भुत शिल्पालंकृत देवालयों का भण्डार है। यह क्षेत्र करीब 125 से भी अधिक पुरातन मन्दिरों से पवित्र हो उठा है। पुरातत्व विभाग ने इन मन्दिरों को बाईस समूहों में विभाजित किया है और हर एक समूह की अपनी-अपनी विशेषता है। ऐहोळे गाँव के चारों और के मैदानों में विविध आकार-प्रकार के ये मन्दिर फैले हुए हैं और इनका अधिकांश भाग पुरातन दुर्ग के प्राचीनों से आवृत है। सातवीं शताब्दी का यह किला कर्नाटक के प्राचीनतम दुर्गों में से एक माना जाता है। अधिकांश मन्दिरों के खण्डहर ही यहाँ अवशिष्ट रह गये हैं परन्तु इनमें पाये जानेवाले वास्तु-शिल्प इतने चेतोहारी हैं कि कला के पुजारी उनके दिव्य सौन्दर्य में अपने को भूल जाते हैं। इतना ही नहीं ऐहोळे गाँव के अनेक मन्दिर ऐतिहासिक

दृष्टि से भी अधिक महत्त्वपूर्ण होने के कारण वे राष्ट्रीय स्मारक के रूप में सुरक्षित रखे गये हैं।

गाँव की ईशान्य दिशा में त्र्यंबकेश्वर आदि मन्दिरों का समूह हैं। इस समूह का प्रमुख मन्दिर त्र्यंबकेश्वर का है जो ग्यारहवीं शती का माना जाता है। मन्दिरों के इस समूह के अन्तर्गत दो त्रिकुटाचल देवालय भी पाये जाते हैं। पासवाले मद्दिनगुडी नामक देवालय भी त्रिकुटाचल के आकार में निर्मित हुआ है। इस मन्दिर में नटराज की सुन्दर शिलामूर्ति नयनाकर्षक है और मुख्य मंडप भी तरह-तरह की शिल्पाकृतियों से अलंकृत है। त्र्यंबकेश्वर देवालय के उत्तर में जैन मन्दिरों का समूह भी पर्यटकों को आकर्षित करता है। ये जैन बसदियाँ भी त्रिकुटाचल शैली में बनायी गयी हैं और कहा जाता है कि ग्यारहवीं शताब्दी में कल्याण चालुक्य राजाओं ने इनका निर्माण किया। ये बसदियाँ जैन नारायण या योगी नारायण कहलाती हैं। कुछ जैन मन्दिरों के भग्नावशेष ही यहाँ पाये जाते हैं। प्रमुख मन्दिर में पार्श्वनाथ की प्रतिमा आज भी करुणा बरसाती हुई खड़ी है। इन मन्दिरों के शिल्पवैचित्र्य तो वर्णनातीत है।

ऐहोळे के मुख्य देवालयों में दुर्गामन्दिर भी एक है जिसके आकार और वास्तुशिल्प बौद्धों के चैत्यालय से मिलते-जुलते हैं। एक ऊँचे और विशाल वेदिका पर इस मन्दिर का निर्माण हुआ है। इसके शिखर रेखानागर शैली में निर्मित होकर अत्यंत कमनीय है। विद्वानों का कहना है कि यह पहले सूर्यदेवता का मन्दिर था। इस देवालय की महत्ता इस बात से है कि यहाँ अनेक देवी-देवताओं के शिलाविग्रहों के दर्शन होते हैं। श्री विष्णु, नरसिंह, महिषासुर मर्दिनी, वराहमूर्ति इत्यादि देवताओं की शिलामूर्तियाँ उस ज़माने के शिल्पकारों की सूक्ष्म कारीगरी को अभिव्यक्त करती हैं। खंभों और भित्तियों पर भी विविध प्रकार की भंगिमाओं में अनुरक्त दम्पत्तियों के चित्र अंकित हुई हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि चालुक्य राजा पुरुषार्थों में और अर्थ के साथ काम को भी महत्व देते रहें।

इसी गाँव में मेगुटी देवालय जो मेगन गुडि कहा जाता है पत्थर को दीवारों से आवृत है और द्राविड शैली में बनाया गया है। ऐहोळे गाँव के दक्षिण पूर्व दिशा में मेगुटीगुड्डा नामक छोटा पहाड़ है जिस पर इस समूह के पुरातन मन्दिर निर्मित हुए हैं। इस दुमंजिले मन्दिर के अन्दर एक गुफ़ा भी है। मन्दिर की प्रथम मंजिल में एक विशाल मण्डप है जिसके स्तंभों पर सुन्दर शिल्पाकृतियाँ दर्शनीय हैं। मंडप को पार करते ही दो पूजा-गृहों के बीच गर्भगृह का दर्शन होता है। कहा जाता है कि इस गर्भगृह में महात्मा बुद्ध की भव्य प्रतिमा प्रतिष्ठित थी जो अब इसके बाहर रखी गयी है। प्रथम मंजिल की छत के नीचे भी ऐसी ही एक सुन्दर मूर्ति अंकित हुई है। इतिहासकारों के अनुसार यह पाँचवीं शताब्दी को संरचना है। कुछ संशोधकों का कहना है कि उस जमाने में यहाँ एक बौद्ध विहार था। इस मन्दिर के प्रदक्षिणा पथ की बाहरी दीवारों पर कई प्राचीन शिलालेख पाये जाते हैं जिनमें से ई. सन् 634 का शिलालेख अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। इस में चालुक्य राजा पुलिकेशी द्वितीय के महामंत्री और सेनाधिपति रविकीर्ति द्वारा जिनेन्द्र मन्दिर के निर्माण का अभिलेख पाया जाता है। इसमें काव्यमय संस्कृतभाषा में कविकुलगुरु कालिदास तथा संस्कृत के लोकप्रिय महाकाव्य 'किरुतार्जुनीयम्' के रचयिता भारवी का भी उल्लेख हुआ है। कवि कालिदास के जीवनकाल के निर्धारण में यह शिलालेख अत्यंत महत्वपूर्ण है।

मेगुटी मन्दिर की थोड़ी ही दूरी पर दक्षिण-पूर्व की ओर जैनों की एक छोटी गुफ़ा है जिसके सामने एक पुरातन मण्डप है। गुफा के अन्दर गर्भगृह में पाँच फुट ऊँचाई की बाहुबली की गंभीर प्रतिमा का दर्शन होता है। चारों ओर की दीवारों में अन्य तीर्थकरों की भी मूर्तियाँ उत्कीर्ण हुई हैं।

मेगुटी मन्दिर के दक्षिण में अड़तीस छोटे –छोटे देवालयों का एक समूह है। यह गलगनाथ समूह कहा जाता है। प्रधान मन्दिर गलगनाथ का है। अन्य मन्दिरों के खण्डहर ही पाये जाते हैं। आठवीं शताब्दी के इस

गलगनाथ मन्दिर का गोपुर रेखानगरी शैली में निर्मित हुआ है। इसके मंडप के स्तंभों में तथा दीवारों पर भी कई शिल्पाकृतियाँ अंकित हुई हैं। इसी समूह में दसबीं शती का एक त्रिकुटाचल भी पाया जाता है।

उपर्युक्त देवालयों के अलावा ऐहोळे गाँव के गौरी गपडु, अंबिगेरे गुडि, चिक्कि गुडि, रामलिंग गुडि, एणियर गुडि, मल्लिकार्जुन गुडि, कुलिगुडि इत्यादि मन्दिर उल्लेखनीय हैं। रामलिंग का देवालय भी त्रिकुटाचल है और इसके मध्यभाग में गर्भगृह है जहाँ शिवलिंग प्रतिष्ठित है। इस मन्दिर में आज भी दैनिक पूजा होती है। यह ग्यारहव शताब्दी का मन्दिर है और इस के समूह में ब्रह्मदेव का भी एक देवालय है। यहीं परशुराम के मन्दिर के साथ विष्णु का एक भव्य देवालय भी दर्शनीय है। ऐहोळे के जैन गुफामन्दिर भी वास्तुकला की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। गर्भगृह में महावीर की भव्य मूर्ति प्रतिष्ठापित है और इस मन्दिर में पायी जानेवाली सुन्दर शिल्पाकृतियाँ प्राचीन जैन शिल्पों के नमूने मानी जाती हैं।

कर्नाटक में ऐहोळे ही ऐसा एक पवित्र जगह है जहाँ एक सौ पच्चीस से अधिक संख्या में मन्दिरों का निर्माण हुआ है। यद्यपि अधिकांश मन्दिरों के भग्नावेश ही रह गये हैं और इनके धार्मिक मूल्य की ओर भी अधिक ध्यान नहीं दिया जाता, फिर भी कला की दृष्टि से ऐहोळे का हरएक मन्दिर अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यहाँ के अनेक देवालयों में सैकड़ों देवी-देवताओं की सुन्दर मूर्तियाँ विभिन्न शैलियों में विभिन्न भंगिमाओं में उत्कीर्ण हुई हैं। दर्शक गण यहाँ कलादेवी की वैविध्यमय सुषमा से चकित रह जाते हैं। प्राचीन काल के बादामी चालुक्य, राष्ट्रकूट, कल्याण चालुक्य आदि राजवंशों की धार्मिक भावना एवं सौन्दर्यबोध ही इन मन्दिरों की सुन्दर संरचनाओं और शिल्पों में प्रकट होते हैं। संक्षेप में कहना है तो ऐहोळे क्षेत्र एक साधारण गाँव नहीं है परन्तु वास्तु एवं शिल्पों का बहुमूल्य संग्रहालय है और कर्नाटक की जनता का इस पर नाज़ है।

बादामी और पट्टदकल्लु के देवालय

दक्षिण भारत का आभूषण तथा प्राच्य वास्तुशिल्पों की खान कर्नाटक के बिजापुर जिले को कहा जाता है। इसी जिल्ले का इतिहास प्रसिद्ध प्रमुख शहर है बादामी जिसके उल्लेख के बिना भारत के सांस्कृतिक और धार्मिक इतिहास अपूर्ण ही रह जायेंगे। सांस्कृतिक महत्त्व से सुसंपन्न बादामी शहर कर्नाटक के दर्शनीय स्थानों में से एक है और भारत के पर्यटक-नक्शे में इसका उज्ज्वल अंकन हुआ हैं। प्राचीन चालुक्यों के शासन काल में यह वातापी, बाडवी इत्यादि नामों से प्रसिद्ध था। चालुक्यों की इस सुन्दर राजधानी वातापी को राजा पुलिकेशी प्रथम ने दुर्ग-निर्माण करके मज़बूत और शत्रुओं के लिए दुर्गम बना दिया। चालुक्य वंश के नरेश कलाप्रेमी तथा कला के पोषक थे। उनके ज़माने में निर्मित अनेक देवालय आज यहाँ देखने के लिए उपलब्ध है। इन मन्दिरों में उपलब्ध अनेक शिलालेख, भित्तिचित्र एवं शिल्पाकृतियाँ उस प्राचीन काल की धार्मिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालती हैं।

बादामी शहर और उसके आस-पास अनेक पुरातन देवालय पाये जाते हैं। जिनमें से चार प्राचीन गुफ़ा मन्दिर वास्तुकला की दृष्टि से विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। ये चारों गुफालय दक्षिणी किले के पश्चिम में पहाड़ की खड़ी चट्टानों पर बालुकाश्मों से निर्मित हुए हैं। पत्थर की सीढ़ियों पर चढ़कर इन गुफा-मन्दिरों तक पहुँच सकते हैं। इन चारों देवालयों में पौराणिक कथाओं से संबंधित अत्यद्भुत शिल्प पाये जाते हैं। इनके कला-सौंदर्य को देखकर दर्शक गण दाँतों तले उँगली दबाकर ही रह जाते हैं । प्राचीन काल में मंदिरों में पाये जाने वाले चित्रों, शिल्पों और अन्य कलाकृतियों से लोग पौराणिक कथा-प्रसंगों की जानकारी प्राप्त करते थे और अनक्षर जनता के लिए यह शिक्षण के एक प्रकार का माध्यम था। प्रथम गुफ़ा मन्दिर शिव का है जिसमें अनेक शिल्पाकृतियाँ दर्शनीय हैं। चट्टान की दीवारों पर अनेक देवी-देवताओं की उभरी हुई शिल्पाकृतियों के

दर्शन से ऐसा लगता है मानों हम किसी देवतालोक में प्रवेश कर चुके हैं। इस शैवमन्दिर के प्रवेशद्वार के दोनों ओर द्वारपालकों की मूर्तियाँ सबका स्वागत करती हैं। गर्भगृह में पत्थर की पीठिका पर बड़ा शिवलिंग प्रतिष्ठित है। प्रवेशद्वार के अन्दर दायीं तरफ़ परमशिव की पाँचफुट ऊँचाई की अत्यंत भव्य मूर्ति भक्तजनों को आकर्षित करती है। शिव की यह नटराज की प्रतिमा अष्टादश भुजाओं के साथ ताण्डव नृत्य की भंगिमा में उत्कीर्ण हुई है। यह भारतीय शिल्प कला का अमूल्य नमूना मानी जाती है। पास ही नन्दी, नर्तन गणपति, कार्त्तिकेय, अर्धनारीश्वर इत्यादि देवताओं के शिल्प दर्शनीय हैं। इनके अलावा इस मन्दिर में और भी कई शिल्पाकृतियों के दर्शन होते हैं जिनमें से विशेष उल्लेखनीय हैं देवी महिषासुरमर्दिनी की अति सुन्दर प्रतिमा, पत्थरों पर उत्कीर्म कुब्ज-गणों की मूर्तियाँ और सर्पराज नाग, छत के नीचे उत्कीर्ण विद्याधर दंपति इत्यादि।

शिव के गुफ़ालय से कुछ ऊँचाई पर भगवान् विष्णु का भी भव्य मन्दिर पर्वत-गुफा के अन्दर निर्मित हुआ है। मन्दिर के प्रवेशद्वार के दोनों ओर विष्णु के द्वारपालकों की मूर्तियाँ हाथों में कमलपुष्पों को धारण करके भव्यमुद्रा में दर्शकों का स्वागत करती हैं। इस मन्दिर की पूर्वी और पश्चिमी दीवारों पर विष्णु की भूवराह एवं त्रिविक्रम मूर्तियों की बड़ी बड़ी शिल्पाकृतियाँ अत्यंत कमनीय हैं। छत के निचले भाग में सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, अनन्तशयन विष्णु, शिव अष्टदिक् पालकों की मूर्तियाँ आदि उत्कीर्ण हुई हैं। हर एक अलंकृत शिल्प में कर्नाटक शिल्पकारों के अत्युत्तम कलाकौशल स्पष्टरूप से अभिव्यक्त हुआ है।

बादामी का तृतीय गुफ़ालय सबसे अधिक सुन्दर और विशाल है। यह विष्णु का भव्यतम देवालय है और इसमें अनेक देवी-देवताओं की बृहत्काय मूर्तियाँ अनुपम शिल्प सौंदर्य से विभूषित हैं। शेषशायी विष्णु, परवासुदेव, भूवराह, नरसिंह, हरिहर आदि की मूर्तियाँ तो नयनाकर्षक हैं। इसी मन्दिर में पत्थरों पर उत्कीर्ण समुद्र-मन्थन के दृश्य को देखकर कला

के पुजारी दर्शक चकित रह जाते हैं। इस मन्दिर में उपलब्ध एक शिलालेख से यह जानकारी मिलती है कि विष्णु के इस भव्य देवालय को ई. 578 में मंगलेश नामक राजा ने बनवाया था। इस मन्दिर के छत के कुछ चित्र भी दर्शनीय हैं परन्तु रंगों की उज्ज्वल चमक अब कम हो गयी है।

उपर्युक्त विष्णु मन्दिर के पूर्व में बादामी का चौथा गुफ़ालय स्थित है। यह जैन मन्दिर है और गर्भगृह महावीर की दिव्य मूर्ति से अलंकृत है। इस मन्दिर में जैन तीर्थंकरों की बीसों मूर्तियाँ अलग-अलग गर्भगृहों में प्रतिष्ठित हुई हैं। इस जैन मन्दिर में योगशाला भी है जिसके मध्यभाग में एक कुब्ज की प्रतिमा दर्शनीय है। दीवारों पर बाहुबलि, सुपार्श्वनाथ तथा कुछ यक्ष-यक्षिणियों की प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हुई हैं। कुछ शिलालेखों के आधार पर कहा जाता है कि यह गुफ़ा-मन्दिर आठवीं शती में निर्मित हुआ था। इन मन्दिरों के बीच एक नैसर्गिक गुफ़ा में महात्मा बुद्ध की शिलामूर्ति का दर्शन होता है। इतिहासकारों का कथन है कि यह ईसा की छठी शती की शिल्पाकृति है।

बादामी के उत्तरी पहाड़ के ऊपर तीन देवालय हैं जिनमें से मालेगित्ती शिवालय वास्तुकला की दृष्टि से अत्यंत आकर्षक है । यह बादामी के सबसे प्राचीन और सुन्दरतम मन्दिर है जो द्राविड़ शैली के गोपुर से सुशोभित है। इस मन्दिर के प्रधान शिल्पी आर्यमिंची का उल्लेख यहाँ के शिलालेख में हुआ है। इस देवलाय के गर्भगृह, सभामंडप, और मुखमंडप भी विविध प्रकार की शिल्पाकृतियों से अलंकृत हैं। कहा जाता है कि यह मन्दिर ईसा की सातवीं शती में बनवाया गया था। गर्भगृह में एक विशाल पीठ पर शिवलिंग का प्रतिष्ठापन हाआ है। इसी शिवलिंग की दायीं ओर एक देवता का सुन्दर शिल्प दर्शनीय है जो सूचित करता है कि यह मन्दिर सूर्यदेवता का रहा होगा। इसी पहाड़ के ऊपरी भाग में और उससे कुछ नीचे भी शिव के दो मन्दिर हैं। ऊपरवाले मन्दिर का गर्भगृह नागर शैली से और नीचे जो शिव-मन्दिर है वह द्राविड़ शैली के गोपर से

सुशोभित हैं। इन तीनों मन्दिरों की दीवारों पर और स्तंभों पर भागवत् रामायणादि पुराणों के कथाप्रसंग उत्कीर्ण हुए हैं।

बादामी के दक्षिणी पहाड़ की तलहटी में अगस्त्य तीर्थ नामक विशाल तालाब है जिसके पूर्वी तट पर छोटे-बड़े कई देवालय पाये जाते है। इनमें से कुछ देवालय राष्ट्रकूट के काल के माने जाते हैं। ईशान्य दिशा के मन्दिर में लकुलीश की मूर्ति प्रतिष्ठापित हुई है। अगस्त्य तीर्थ के दक्षिण तट पर भी विष्णु, शिव, ग्रामदेवता एल्लम्मा आदि देवताओं के छोटे-छोटे मन्दिर हैं। इन देवालयों में विरुपाक्ष, दत्तात्रेय मल्लिकार्जुन आदि की मूर्तियाँ भी प्रतिष्ठित हैं। पत्थर की ये सुन्दर शिल्पाकृतियाँ कल्याण चालुक्य राजाओं के कला प्रेम को विशेष रूप से मूर्ति शिल्पकला के प्रति उनके अपार अनुराग को घोषित करती हैं।

बादामी शहर में भी कुछ देवालय है जिनमें से जम्बुलिंगेश्वर का त्रिकुटाचल मन्दिर विशेष उल्लेखनीय है। मन्दिर के सभामंडप के तीनों ओर तीन गर्भगृह हैं। जिनके ऊपर ईंट के गोपुर हैं। ये विजयनगर शासन काल में निर्मित हैं और इस मन्दिर के एक शिलालेख से यह जानकारी मिलती है कि ई. 699 में राजा विजयादित्य की माता विनयवती ने इस भव्य मन्दिर को बनवाया था। इस मन्दिर में अनेक शिल्पाकृतियों की सृष्टि करके उस जमाने के शिल्पकारों ने अपनी करकुशलता को प्रदर्शित किया है। भारत के पुरातत्व विभाग ने इसी सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक महत्व के शहर बादामी में वस्तुसंग्रहालय को स्थापित किया है। हर साल यहाँ लाखों पर्यटक आकर कर्नाटक की वास्तुशिल्पकला का आनन्द लूटते हैं।

पट्टदकल्लु नामक एक रम्य ऐतिहासिक स्थल बादामी शहर से करीब पच्चीस मील की दूरी पर मलप्रभा नदी के तट पर स्थित है । इसको चालुक्य काल के अति भव्य पुरातन मन्दिरों का संग्रहालय कह सकते हैं। इन मन्दिरों की वास्तु शिल्पकला से आकर्षित होकर हर साल लाखों कलाप्रेमी पर्यटक पट्टदकल्लु आते हैं। पट्टदकल्लु में कई पुरातन देवालय हैं

जिनमें से प्रमुख हैं विरूपाक्ष मन्दिर, पापनाथ और गळगनाथ के देवालय संगमेश्वर और जम्बुलिंग देवालय। विरूपाक्ष का मन्दिर सबसे बड़ा है और कहा जाता है कि रानी लोकमहादेवी ने इस विशाल मन्दिर को बनवाया था। आयताकार प्राकारों से आवृत प्रांगण के मध्यभाग में प्रधान देवालय निर्मित है। इस भव्य मन्दिर के नन्दीमण्डप, सभा मण्डप तथा ऊँचे ऊँचे स्तंभ और दीवारें तरह तरह की शिल्पाकृतियों से सुसज्जित हैं। रामायणादि पुराणों के अनेक दृश्य उत्कीर्ण हुए हैं। विरूपाक्ष का यह मन्दिर बादामी चालुक्य काल का सबसे बड़ा मन्दिर है जिसके गर्भगृह में कृष्णशिला का शिवलिंग प्रतिष्ठापित है। इसी देवालय के पास ही मल्लिकार्जुन स्वामी का मन्दिर भी दर्शनीय है। इसके गर्भगृह में भी शिवलिंग प्रतिष्ठित हैं और मुखमण्डप के खंबों पर विभिन्न भंगिमाओं में नृत्यांगनाओं की कमनीय मूर्तियाँ उत्कीर्ण हुई हैं। सभा-मण्डप में भी गरुडवाहन पर महाविष्णु की मंगलमयी मूर्ति नयनाकर्षक है। मण्डप के खंभों पर पञ्चतंत्र, हरिवंश, रामायण, महाभारतादि कथाओं के कई दृश्य हैं। इन शिल्पाकृतियों से दर्शकों को पौराणिक नीतिप्रद कथाओं की जानकारी भी मिलती है और साथ-साथ प्राचीन काल के शिल्पियों की कला-प्रतिभा और सौन्दर्यबोध का भी परिचय मिलता है।

पट्टदकल्लु के संगमेश्वर देवालय द्राविड़ शैली की अत्यद्भुत कलाकृति है। गळगनाथ मन्दिर का निर्माण नागर शैली में हुआ है। इसका विशाल सभा मण्डप के सुन्दर शिल्प अत्यंत मनोहर है। इस देवालय के कुछ भाग तो शिथिल हो गये हैं। इस मन्दिर से कुछ दूरी पर जंबुलिंग मन्दिर दृष्टिगोचर होता है। यह मन्दिर छोटा है परन्तु शिल्पों का खज़ाना है। वीरभद्र की मूर्ति, द्वारपालकों की प्रतिमाएँ गर्भगृह में शिवलिंग, अर्धनारीश्वर, महाविष्णु आदि की अतिसुन्दर कारीगरी से युक्त प्रतिमाओं को यहाँ देख सकते हैं। इसी मन्दिर के निकट ही काडुसिद्धेश्वर मन्दिर के गर्भगृह के ऊपरी भाग में नन्दी पर आरूढ शिवपार्वती के विग्रह का शिल्प

सौन्दर्य मन्दिर को और भी मंगलमय बना देता है। काशी-विश्वेश्वर मन्दिर नागरेखा शिखर से विभूषित है और इसके गर्भगृह में भी शिवलिंग प्रतिष्ठित है इस मन्दिर को अनेक शिल्पाकृतियों में त्रिपुरान्तक की दिव्य मूर्ति तथा स्तंभों पर नृत्य की भंगिमा में रमणियों की प्रतिमाएँ अत्याकर्षक हैं।

पट्टदकल्लु में पापनाथ का देवालय भी विशेष उल्लेखनीय है। इसके वास्तुशिल्प में नागर व द्राविड़ शैली के सुन्दर सम्मिश्रण दृष्टिगोचर होता है। इसी गाँव में द्राविडशैली में निर्मित एक जैन देवालय है। इनके अलावा इस गाँव में अनेक पुरातन मन्दिरों के भग्नावशेष भी मिलते हैं।

पट्टदकल्लु के सभी देवालयों में अनुपम शिल्प सौन्दर्य का साक्षात्कार होता है। इस शहर को विविध शैलियों में निर्मित कमनीय देवालयों का साम्राज्य कह सकते हैं। बादामी और पट्टदकल्लु के मन्दिर तो वास्तुशिल्प के विद्यार्थियों के लिए शिक्षण केन्द्र माने जाते हैं। वास्तुवैभव से युक्त ये पवित्र देवालय कलारसिकों के लिए परमानन्द उद्गम स्थान है। ये पुरातन मन्दिर न केवल कर्नाटक की किन्तु भारतीय वास्तुशिल्प कला के वैभव को घोषित करके विश्व के सांस्कृतिक क्षेत्र में भारत को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है।

भीमा, नेत्रावती, घटप्रभा, मलप्रभा कृष्णा, कावेरी, कपिला, तुंगभद्रा, कर्नाटक अत्यन्त सुन्दर नगरी है। यहां के कलाकृति विश्वभर में प्रसिद्ध है। आदि पवित्र नदियों से परिपूत कर्नाटक के मनोरम प्रांगण में प्राचीन काल से ही विमल भक्ति की भी अजस्त्र मन्दाकिनी चारों ओर से प्रवाहित होकर भक्तजनों के हृदय को ब्रह्मानन्द से परिप्लावित और आह्लदित करती आ रही है। प्राचीन काल से ही पुण्यभूमि कर्नाटक विविध धर्मों का, विभिन्न मतों का आश्रयस्थल रहा है। वेदान्त के तीनों आचार्य शंकर, रामानुज और मध्व ने कर्नाटक को ही केन्द्र बनाकर, मन्दिरों और मठों की स्थापना करके अपने-अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। वीरशैव

मत के प्रवर्तकों का तो कर्नाटक मातृगृह रहा है और जगह-जगह पर वीरशैवों के मठों व शिवालयों का निर्माण हुआ है। ईश्वर के सान्निध्य से पवित्रीकृत मन्दिर तो भक्तजनों के लिए उपासना केन्द्र बन गये। कर्नाटक में तो हज़ारों की संख्या में मन्दिर पाये जाते हैं और अधिकांश देवालयों का वर्णन पुराणों में उल्लिखित होने से इन की पुरातनता और महत्ता सिद्ध होती हैं। प्रस्तुत लेखमाला 'कर्नाटक के मन्दिर' में करीब तीस से अधिक प्रमुख मन्दिरों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। परन्तु कर्नाटक के सभी मन्दिरों का विवरण लेखनी द्वारा प्रस्तुत करना गागर में सागर भर देने का असाध्य प्रयत्न होगा।

कर्नाटक के मन्दिरों के विहंगावलोकन से यह पता चलता है कि ये देवालय प्रार्थनास्थल मात्र नहीं अपितु भारतीय वास्तुकला एवं शिल्पकला के अत्युत्तम नमूने भी हैं। शिवमोग्गा जिल्ले के केळदि और इक्केरी नामक दो गाँवों में जो शिवालय निर्मित हुए हैं उनको शिल्पकला के भण्डारगृह कह सकते है। केळदि गाँव के श्री रामेश्वर देवालय तथा पार्वतांबा एवं वीरभद्र के देवालय केळदि के कलाप्रिय शासकों से बनवाये गये। इन मन्दिरों में द्राविड़ और होयसल की सम्मिश्रित वास्तुशैली के नमूने देख सकते हैं। रामेश्वर देवालय के गर्भगृह में दो फुट ऊँचाई के शिवलिंग प्रतिष्ठापित है जिसकी चमक अब भी फ़ीकी नहीं हुई है। वीरभद्र देवालय में अनेक शिल्प दर्शनीय हैं जिनमें से एक शिलामूर्ति विचित्र सौन्दर्य से युक्त है। इस पुरुषाकार मूर्ति के पाँव हाथी के जैसे हैं, हाथी की सूँड जैसे हाथ, पक्षी की देह, सिंह-मुख इत्यादि से यह युक्त है। इक्केरी गाँव में अघोरेश्वर का देवालय है। शिल्पालंकृत यह देवालय ऐतिहासिक महत्त्व से भी संपन्न है।

हासन जिल्ले के श्रवणबेळगोळ शहर का गोम्मटेश्वर का देवालय लोक विख्यात है। गोम्मटेश्वर की मूर्तियाँ भारतीय शिल्पकला को कर्नाटक की अपूर्व देन हैं। गोम्मट की यह मूर्ति आदि तीर्थंकर वृषभनाथ के कनिष्ठ पुत्र बाहुबलि की है। जैन मतावलंबियों में बाहुबलि से संबन्धित कई कथाएँ

प्रचलित हैं। इन्द्रगिरि पर्वत के शिखर पर गोम्मटेश्वर की गंभीर शिलामूर्ति प्रतिष्ठापित हुई है। कहा जाता है कि हज़ार साल पहले चावुण्डराय नामक मंत्री ने इस भव्य मूर्ति को बनवाया। बारह वर्षों में एक बार इस दीर्घकाय प्रतिमा का मस्तकाभिषेक होता है और इस अद्भुत दृश्य का आनन्द लूटने के लिए देश-विदेशों से भक्तगण इकट्ठे हो जाते हैं। गोम्मटेश्वर की यह सुन्दर शिलामूर्ति कर्नाटक की शान है।

इन्द्रगिरि पर्वत के पास ही चन्द्रगिरि पर्वत का भी दर्शन होता है। कहा जाता है कि इस पर्वत पर भद्रबाहु नामक जैनमुनि तपस्या करते थे। यहाँ एक बसदि भी है जिसके बारे में कहा जाता है कि इस स्थल पर चन्द्रगुप्त मौर्य ध्यान करता था। वास्तु-कला की दृष्टि से यह चन्द्रगुप्त-बसदि महत्त्वपूर्ण है। यहाँ के जालन्धरों पर भद्रबाहु एवं चन्द्रगुप्त मौर्य के जीवन से संबन्धित घटनाएँ अंकित हुई हैं। इसी के पास शांतिनाथ बसदि, चावुण्डराय बसदि तथा पार्श्वनाथ बसदि भी दर्शनीय हैं।

कर्नाटक में पाये जानेवाले मन्दिरों की विशेषता यह है कि यहाँ भक्तजनों के उदार चिंतन एवं सहनशीलता के कारण वैष्णव व शैव मन्दिर कहीं कहीं साथ-साथ निर्मित हुए हैं। पर्वत शिखरों पर भी सुन्दर देवालयों के दर्शन होते हैं और कहीं कहीं समुद्र-तट पर। कुछ स्थलों में तो नदी के प्रवाह के बीच द्वीपों के रूप में मन्दिर पाये जाते हैं। कर्नाटक के पर्वतीय प्रदेशों में तो अनेक गुफ़ा-मन्दिर मिलते हैं। अधिकांश देवालय तो पौराणिक कथाओं से भी जुड़े हुए हैं। कर्नाटक के मन्दिरों का निर्माण तो विविध शैलियों में हुआ है, जैसे द्राविड़, बेसर, होयसल, विजयनगर आदि। कुछ मन्दिरों में तो वास्तुकला की मिश्रित शैली भी अत्यंत आकर्षक है। पवित्रभूमि कर्नाटक में विभिन्न राजवंशों के शासन काल में तरह-तरह की शैलियों में मन्दिर-निर्माण हुआ है जिसके कारण कर्नाटक के स्थापत्यकला में सुन्दर वैविध्य भी दृष्टिगोचर होता है। कुछ मन्दिर तो स्वातन्त्र्य संग्राम के दिन सत्याग्रहियों के भी मुख्य केन्द्र व आश्रयस्थल होते थे।

कर्नाटक स्वयं एक दर्शनीय राज्य है। यहाँ के प्राकृतिक सुषमा से आकर्षित होकर प्रकृतिमाता की गोद में शांतियुत दिन बिताने के लिए हर साल लाखों पर्यटक आते हैं। कर्नाटक के भव्यतम पुरातन मन्दिर तो इस राज्य की पवित्र सुषमा में चार चाँद लगा देतें हैं। जनता की भक्ति-भावना के ही प्रतीक बनकर ये देवालय सब को आह्लादित करते हैं। इन मन्दिरों के दर्शन से भक्त-गण शांति का अनुभव करते हैं, कलाकार आनन्दित हो जाते हैं, कविगण प्रेरित हो जाते हैं और साधारण पर्यटक उत्साहित हो जाते हैं। भारत की प्राचीनतम संस्कृति इन्हीं मन्दिरों के कारण आज के इस वैज्ञानिक युग में भी पनपती आ रही है।

******

कर्नाटक के प्रमुख दर्शनीय स्थानों की समीक्षा

भारत में कर्नाटक एक ऐसा राज्य है जो देखनेवालों का मन मोहित करता है। कर्नाटक की नदियाँ मन-मोहक ढंग से नर्तन करती हुई बहती है। यहाँ की पहाडियों का वैभव बेजोड़ है। कर्नाटक संस्कृति तो प्रकृति की गोद में बसे यहाँ आगुंबे के सूयोदय देखने लायक है। कर्नाटक तथा कन्नड़ भूमि का सौंदर्य से हृदय आनंद और उल्लास से भर उठता है। स्थिर ऐश्वर्यपूर्ण प्रकृति सौंदर्य से युक्त है। यहाँ की प्रसिद्ध नदियाँ कृष्णा, कावेरी, तुंगभद्रा, भीमा, मलप्रभा, घटप्रभा आदि। कर्नाटक संस्कृति तो प्रकृति की गोद में बसे तपोवनों में ही विकसित हुई है। प्रसन्न रूप ही सामने आया है। यहाँ सात्विक भावों के प्रति प्रेरित करता है अथवा अपने ममतामयी स्पर्श से थपथपाता दुलराता है।

इस सुन्दर प्रदेश के निवासी व सौंदर्योपासक कलाकार की निष्ठा एवं तपस्या से बनाई हुई मूर्तिकला व शिल्पकलाओं को हम बादामी, ऐहोळे, पट्टदकल्लु, बेलूरु, हळेबीडु, सोमनाथपुर, श्रवणबेळुगोळ आदि स्थानों पर देख सकते हैं। यहाँ के नगर सौंदर्य के संबंध में क्या कहें वह तो सौंदर्य का प्रतिरूप है। यहाँ के राजाओं और महापुरुषों की पावन धरती का वर्णन करना कठिन कार्य है। मैसूर संस्थान के 'राजा वडेयरु' बारे में वर्णन करने के लिए शब्द ही कम पड़ती है। इसलिए कर्नाटक के दर्शनीय स्थानों का प्रत्येक्ष दर्शन करना अपने आप में एक नया अनुभव है।

कर्नाटक के कुछ प्रमुख दर्शनीय स्थान

कर्नाटक के बीस जिलों में बीदर एक जिला हैं। वहाँ बसव कल्याण एक पवित्र तीर्थ स्थल है। यह राजा विज्जळ की राजधानी थी। आज वहाँ केवल अतीत नगर के खंडहर ईधर–उधर नजर आते हैं। इन शिलाखंड़ों में आठ सौ साल पूर्व की रोमांचकारी घटनाएँ छिपी हैं। बिज्जळ

के प्रधान मंत्री युगप्रवर्तक महात्मा बसवेश्वर थे। वह नगर ही बसव कल्याण क्षेत्र के नाम से आज यह पुण्य भूमि प्रसिद्ध है।

बसव कल्याण क्षेत्र में देखने योग्य स्थान

1. गणेश मंदिर : यहाँ गणेश मूर्ति का सुन्दर शिला–विग्रह है। यह मंदिर नगर प्रवेश (दक्षिण) में दायी ओर स्थित हैं।
2. प्रभुदेव मठ–बाहरी दृश्य (पूर्वोत्तर से) नगर से दक्षिण की ओर दो किलो मीटर दूर पर एक छोटे से टीले पर स्थित है । मठ में शिवलिंग है। यहाँ जंगमों (साधु) की भीड रहती है। हमेशा भजन प्रवचन, पुराण–वाचन चलता रहता हैं।

प्रभुदेव मठ के प्रांगण का दृश्य (दक्षिणाभिमुख) पुरुष कट्टा : लिंगायत धर्म के युग प्रवर्तक महात्मा बसवेश्वर यहाँ बैठकर भक्तो को लिंग का मर्म समझाया करते थे। आज भी भजन–किर्तनादि चलता रहता है।

3. बसवेश्वर अरमने (पूर्वाभिमुख) : प्रभुदेव के मठ से एक किलो मीटर दूरी पर दो गुफाएँ हैं। पूर्वाभिमुख गुफा “पूजागृह” कहलाता है। अंदर शिवलिंग की स्थापना है।
4. अक्कनागम्मा गवि : बसवेश्वर अरमने के पीछे सो गज के फासले पर एक गुफा है। उसका मार्ग सीधा नहीं। बाहरी प्रागंण में अक्कनागम्मा का एक विग्रह रखा गया है। कहते है कि यह बसवेश्वर की बहन थी और महा शिवशरणी (शिव–भक्तिन) थी।
5. त्रिपुरांत सरोवर : यह क्कनागम्मा की गुफा के पिछले भाग में ही त्रिपुरांत सरोवर है। पुराण कथानुसार त्रिपुर का दहन वहीं हुआ था। सरोवर के उत्तरी भाग में त्रिपुरांत गाँव है।
6. किले का माहाद्वार : नगर के दक्षिण में नगराभिमुख किला हैं। मराठों के जमाने का यह किला अब भी अच्छी स्थिति में है निजाम के जमाने में यहाँ एक नवाब रहता था। यहाँ अनेक भग्न

शिलामूर्तियाँ देखने को मिलती हैं। अब यहाँ नगर पालिका का कार्यालय है।

7. घनलिंग रुद्रमुनि की गुफा : एक तिब्बे को खोदकर गुफा बनाई गई है। इस टीले को 'मरिदेवर गुड्डा' कहते हैं।
8. अम्बिगर चौडय्यन गुडि : सत्य और सद्धर्म समर्थक अंबिगर चौडय्या शरण कुल के श्रेष्ठ थे। नाविक को 'अंबिग' कहते हैं। ये रुद्रमुनि प्रभुदेव के चेले थे। अतः इनको 'मरिदेवरू' नाम से पुकारते थे। गुफा में शिवलिंग है।
9. मडिवाळ माचिदेव मंदिर : यह त्रिपुरांत सरोवर के पास एक सौ राज के फासले पर पश्चिमोत्तर में स्थित है। मंदिर में एक छोटे से सरोवर के मध्य में है। इस सरोवर में श्वेत कमल मिलते हैं।

इनके अलावा 'नुलिय चन्दय्य की गुफा' 'नारायण पुर का शिवमंदिर,' 'सिद्धेश्वर मंदिर', 'बांधवार ओणी', 'मोळिगे मारय्या की गुफा', 'अमृत कुंड' 'धर्मशाला', 'श्री सदानंद स्वामी मठ', आदि भीदर में देखने योग्य स्थल हैं।

मैसूर नगर एवं अन्य दर्शनीय स्थान

मैसूर नगर अत्यंत भव्य सुन्दर नगर हैं। यहाँ मैसूर महाराजा का भव्य महल है। यह महल मनमोहक एवं हिन्दू संस्कृति का, राज परिवार का परिचय करने वाला भव्य भवन हैं। विश्व भर में आज भी मैसूर दशहरा प्रख्यात है।

चामुंडी पहाड़ पर चामुंडी देवी का मंदिर है। यह महाराजाओं की कुल देवता है। अत्यंत सुन्दर मूर्ति दर्शने–पूजने लायक है। जगन्मोहन प्यालेस, कृष्णराज सागर, नंजनगूड आदि स्थान देखने लायक हैं। मैसूर विश्वविद्यालय तथा कर्नाटक सरकार की मेडिकल और आयुर्वेद कॉलेज, जे.एस.एस. इन्जिनीयरिंग, एन.ए.ई इन्जिनीयरिंग, के.एस.ओ.यू., मृगालय केंद्रीय सी.एप.टी.आर.ऐ., के.एस.सी. सिल्क फैक्टरी आदि यहां पर है। चेलुवांबा हास्पिटल, के.आर. हास्पिटल, महारानी कॉलेज आदि मैसूर

राजा ने बनवाया था। इसके अलावा ट्राइनिंग कॉलेज, सी.आई.आई.एल आदि है।

मंड्या

यह मैसूर–बेंगलोर रास्ते में मिलता है। स्. एम. विश्वेश्वरय्या की दुरदर्शिता एवं परिश्रम के फल स्वरूप कृष्णराज सागर का पानी यहाँ तक आकर कई मीलों की भूमि को ऊर्वर बनाया है। यहाँ का शक्कर कारखाना, बहुत मशहूर है। कुछ दूर पर श्रीरंगपट्टण है, जो जगत् प्रसिद्ध कावेरी नदी के बीच में बसा है। यहाँ पर हैदरअली और टीपुसुल्तान का राजभवन, मस्जिद और मकबरा आदि हैं। हिन्दुओं का पवित्र देवालय श्रीरंगनाथ स्वामि मंदिर अति प्राचीन एवं अत्यंत सुन्दर हैं।

मेलुकोटे (यादवगिरि)

दक्षिणी के चार प्रधान क्षेत्र हैं। : 1) श्रीरंग 2) तिरुपति 3) काँचीपुरम 4) मेलुकोटे

श्री रामानुजाचार्य जी ने मेलुकोटे क्षेत्र का उद्धार किया। यह मंड्य नगर से 20 मील दूरी पर है। श्री रामानुजाचार्य जी करीब 16 वर्ष इस क्षेत्र में रहे। यहाँ संपत्कुमारस्वामी का विशाल मंदिर है। मुख्य मूर्ति भगवान नारायण की है। मंदिर के पास पंचतरणी या पुष्करिणी नामक तीर्थ है। इसके पास के पर्वत पर योग–नृसिंह का मंदिर है। इस तीर्थ के नजदीक परिधान शिला है। कहा जाता है कि भगवान दत्तात्रेय ने इसी शिला पर सन्यास लिया था। इसी शिला पर श्री रामानुजाचार्य ने काषाय वस्त्र और दंड को रखकर फिर से उन्हें ग्रहण किया था। कहा जाता है कि स्वामी जी ने स्वयं भगवान नारायण मूर्ति का प्रतिष्ठापन किया। कर्नाटक के महाराजा ने वैरमुडि उत्सव के लिए स्वामीजी को सोने के गहने दिये है।

आजकल संस्कृत पाठशाला एवं वेदपाठशाला चल रही हैं। संशोधन कार्य विस्तार रूप से चल रहा है।

मडिकेरी

कूर्ग प्रकृति देवी का आवास स्थान है। यह वीर योद्धा पुरुषों का जन्म दिया है। भारत के सेनानी जेनरल एस. करियप्पा जैसे वीरों को जन्म देनेवाला स्थल है। प्राचीन काल के राज-महाराजाओं के सुन्दर राजमहल, किला देखने योग्य है। कावेरी नदी का पवित्र उगमस्थान 'तलकावेरी' यही है। यह दक्षिण का काश्मीर कहा जाता है।

मंगलूर

अरबी समुद्र के किनारे बसा हुआ सुन्दर नगर है। यहाँ का बंदरगाह देखने योग्य है। यहाँ विदेशों से जहाज आते जाते हैं। खुब व्यापार चलता है। इस जिले में उडुपि, धर्मस्थळ और सुब्रह्मण्य के मंदिर हैं। उडुपि में माध्वसंप्रदाय का श्रीकृष्ण मंदिर, मठ आदि हैं। यहाँ हर रोज भक्तों की भीड होती हैं। 'कनकदासरु' को दर्शन देनेवाला परमात्मा श्रीकृष्ण की मूर्ति और मंदिर देखने लायक है।

धर्मस्थळ

यह जैन धर्मावलंबियों का स्थान है। यहाँ की विशेषता है कि भगवान शिव है, अर्चक वैष्णव है और संसक्षक जैन हेग्गड़े है। यहाँ रोज पूजा के लिए हजारों यात्री आते हैं। सब को उचित भोजन की व्यवस्था, ठहरने की व्यवस्था है। नाम से प्रसिद्ध है–"धर्मस्थल"। कहते है कि कई भक्तों से भेजनेवाले, आये एम. ओ. पैसे प्राप्त करने के लिए एक अलग विभाग है, तुरन्त प्रसाद भी भेजा जाता है। कार्कल भी जैनियों का तीर्थस्थान है। यहाँ बाहुबलि (गोमटेश्वर) की मूर्ति है। वेणूर और कार्कल में भी बाहुबलि की मूर्तियाँ हैं। कटील नामक गाँव में गणपति मंदिर दुर्गा परमेश्वरी है। यह अत्यंत प्रसिद्ध धार्मिक स्थल है। इस की महिमा अपार है। इस प्रकार मंगलूर जिल्ले में हिन्दू और जैन मतावलबिंयों के अनन्य धार्मिक स्थान हैं।

उडुपि

यह दक्षिण कन्नड़ जिल्ले का प्रमुख तीर्थ–स्थान है। इसका प्राचीन नाम–उडुपा था, जिसका अर्थ है–उडु–नक्षत्र पा = पालक अर्थात् नक्षत्रो का पालक चन्द्रमा है। इसके और भी पुराने नाम है–रजतपीठपुर, रौफ्यपीठपुर, शिवाली आदि हैं। यहा मध्वाचार्य के आठ मठ हैं।

श्री कृष्णमठ : यह मठ श्री मदनन्तेश्वर मंदिर के उत्तर पूर्व में है। यहीं मठ का महाद्वार है। मंदिर में प्रवेश करते ही श्री मध्वाचार्य जी की मूर्ति दिखाई पड़ती है। एक और गरुड का मंदिर है। उसी स्थान पर मुख्यप्राण देवरु (श्री हनुमानजी) का मंदिर है। कहा जाता है कि दोनों मूर्ति यों को वादिराज स्वामीजी अयोध्या से लाये थे। मुख्य मंदिर श्रीकृष्णमूर्ति शालिग्राम शिला की है। यहाँ कनकदास को श्रीकृष्ण ने अपने दर्शन दिये थे। कनककिंडि से मूर्ति दिखाई देती है। यह क्षेत्र माध्वसिद्धांत प्रवर्तकों के लिए परम पूज्य स्थान है।

कारवार: यह भी अरबी समुद्र के किनारे बसा है। यहाँ भी एक बन्दरगाह बनाया गया है। अभी–अभी जहाज आने लगे हैं। इस जिले में भी कई पुण्यक्षेत्र हैं। गोकर्ण इस जिल्ले का प्रमुख स्थान है। यह दक्षिण के काशी नाम से प्रसिद्ध है। गोकर्ण के अलावा और पाँच क्षेत्र हैं। 1) सिद्धेश्वर 2) कुमटा के पास धारेश्वर 3) होन्नावर तालुक में मुरडेश्वर 4) कारवार के पास सेज्जेश्वर 5) गुणवंतेश्वर । गोकर्ण में महाबलेश्वर मंदिर बहुत विशाल है।

रावण ने तपस्या से प्राप्त आत्मलिंग की स्थापना यहाँ की है। गोकर्ण क्षैत्र की कहानी बहुत लंबी है। सिर्फ यहाँ इतना कह सकते हैं कि रावण की तपस्या से प्रसन्न भगवन ईश्वर ने आत्मलिंग प्रदान किया। रावण कैलास पर्वत से लौटते गोकर्ण तक आये, शाम का समय हो गया। संध्यवंदन करने हेतु समुद्र के पास जाना था, देवताओं की प्रार्थना को मानते हुए गणेशजी ब्रह्मचारी का रूप धारण कर वहाँ आ गये। रावण ब्रह्मचारी के हाथ में आत्मलिंग सौपकर संध्यावंदन करने चले। ब्रह्मचारी ने कहा था कि

तीन बार पुकारने पर न लौटेंगे तो आत्मलिंग को भूमि पर रख देगा। देवताओं की प्रार्थना सुन महाविष्णु ने तीन लोकों की शक्ति आह्वानित की। गणेश ने तीन बार रावण को पुकारा। वह न आया। मूर्ति पृथ्वी पर रख दी। रावण जब लौटा तब आत्मलिंग भूमिगत हो गया था। रावण सारी शक्ति लगाकर उसे खींतने लगा। पर खींच न सका। बेहोश होकर गिर पड़ा। होश में आने पर क्रोध में आकर, ब्रह्मचारी गणेशजी के सिर पर प्रहार किया और निराश हो लंका लौट गया। रावण के प्रहार से व्यथित गणेश वहाँ से चालीस पद जाकर खड़े रह गये। शंकर ने प्रत्यक्ष होकर गणेश जी को कह दिया कि तुम्हारे दर्शन किये बिना, जो मेरे दर्शन–पूजन करेगा उसे उस पूजा का पुण्य फल प्राप्त न होगा। कहते हैं कि महादेव जी पार्वती समेत एवं अन्य तैतीस करोड़ देवताओं सहित गोकर्ण में रहते हैं। अतः यह गोकर्ण–क्षेत्र भूकैलास के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

जब रावण, लिंगमूर्ति को बाहर निकालने खींच रहा था, उसके अंश उसके हाथ में आ जाते थे, गुस्से से उनको दूर फेंकते थे, वे जहाँ जहाँ गिरे वह एक–एक पुण्य क्षेत्र कहा गया। पहले ऐसे पाँच क्षेत्रों का नाम उल्लेख किया गया है। गोकर्ण में महाबलेश्वर मंदिर ही प्रधान मंदिर है। इसी के पास कलकलेश्वर लिंग है।

बीस वर्षों में एक बार अष्टबध महोत्सव होता है। मंदिर में आत्मलिंग दर्शन कर लेने के बाद बाहर आने पर सभी मंटप में श्री गणेश पार्वती तथा बीच में श्रीनंदीजी हैं। श्री दत्तपादुकाएँ, दत्तमूर्ती, वीरभद्र की मूर्ति, साक्षेईश्वर, कुटलेश्वर आदि कई मूर्तियाँ यहाँ पर हैं। चालीस पद पर सिद्ध गणपति की मूर्ति है जिसके मस्तक पर रावण द्वारा हुए आघात का चिह्न है। क्षेत्र में कोटितीर्थनाम का एक तीर्थ स्थान है। यात्री लोग यहाँ स्नान कर के प्रप्रथम गणेश की मूर्ति के दर्शन करते हैं फिर महाबलेश्वर के।

शंकरनारायण मंदिर

यह महाबलेश्वर मंदिर के पास ही है। यहाँ मूर्ति का आधा भाग शिव का तथा आधा विष्णु का है। इस के समीप ही वैतरणी तीर्थ है।

गोकर्ण के पास ताम्राचल नामक एक पहाड़ है। यहाँ से ताम्रापर्णी नामक नदी निकलती है। मंदिर की पिछली तरफ ही ताम्रगीरी का मंदिर है। इस के सामने ताम्रगंगा है जिससे मृतकों की हड्डियाँ मोक्ष के लिए डाली जाती हैं। कहा जाता है कि हड्डियाँ पिघल जाती हैं। गोकर्ण के मध्य में श्री वेंकटेश्वर मंदिर है। इस मूर्ति के हाथ में चक्र है। कहा जाता है कि महाविष्णु इस क्षेत्र के रक्षणार्थ चक्रधारी के रूप में खड़े हैं।

भद्रकाली

गोकर्ण क्षेत्र की रक्षा के लिए द्वारदेश पर ही दक्षिणाभिमुख होकर एक देवी की मूर्ति खडी है। यहाँ भद्रकाली देवता की मूर्ति है। गोकर्ण के समीप समुद्रतट पर एक पर्वत है, जिसे शतश्रृग कहते है। कहा जाता हैं कि महापराक्रमी गरुड़ ने इसे लाकर रखा था।

गोकर्ण में निम्न लिखित स्थान भी देखने को मिलते हैं :- रुद्रपाद, पट्टविनायक, उमावन, उमामहेश्वर, ब्रह्मकुंड, ब्रह्मेश्वर, श्रीनृसिंह, श्री कृष्ण क्षेत्र, केतकी विनायक, सिद्धेश्वर मणिभद्र, भूतनाथ, कुमारेश्वर, सुब्रह्मण्य, गुहातीर्थ, नागेश्वरंतिर्थ, गोगर्भ, अघनाशिनी, कामेश्वर, कुबेरेश्वर, इन्द्रेश्वर, मणिनागह, शालमली और गंपावली नदियाँ, रामतीर्थ, सामेश्वर, भीमकुंड, कपिलतीर्थ, अशोकतीर्थ, अशोकेश्वर, मार्कण्डेय तीर्थ, मार्कडेश्वर, योगेश्वर, चक्रखंडेश्वर, गायत्री, सावित्री–सरस्वती कुंड, सोमतीर्थ, चन्द्रतीर्थ, सूर्यतीर्थ आदि। इनमें अधिकाँश क्षेत्र समुद्रतट पर हैं।

कारवार में इडुगुंजी गणेश्वर, मुरडेश्वर आदि क्षेत्र भी देखने लायक है।

बेळगाँव

यह कर्नाटक के चार विभागों में से एक मुख्य–स्थान है। बेळगाँव प्रकृति देवी की गोदी में लगलगा रहा है। यहाँ से थोडी दूर पर कित्तूर राणी चेन्नम्मा का स्मारक स्थान है। कित्तूर एक ऐतिहासिक प्रसिद्ध स्थान है।

धारवाड़

विद्याकेन्द्र के अभिधान से ज्यादा प्रसिद्ध है, यह उत्तर कर्नाटक का प्रमुख शिक्षा केन्द्र कहते हैं कि सन् 1917 में ही कर्नाटक कॉलेज की स्थापना हुई थी जिसने आगे चलकर विश्वविद्यालय का रूप धारण कर लिया। धारववाड में विश्वविद्यालय के अलावा कई आर्टस कॉलेज, साईन्सकॉलेज, कृषी कॉलेज, मेडिकल, इंजनियरिंग कॉलेज, बी.एड्. ट्रैनिंग कॉलेज आदि हैं।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की शाखा–कर्नाटक प्रांतीय हिन्दी प्रचार सभा का कार्यालय है। हुबली–धारवाड़ मिले जुले शहर हैं। आजकल धारवाड–हुबली एक शहर मानते हुए कार्पोरेशन के अधीन में आ गया है। हुबली में मूरुसाविर मठ तथा श्री सिद्धारूढस्वामी मठ हैं।

बिजापुर

यह कर्नाटक का एक जिला केन्द्र है। यहाँ विश्वविख्यात गोलगुंबज है। बिजापुर जिल्ले में सालोटगी शिवयोगीश्वर देवालय, बागेवाडी, कूडलसंगम, ऐहोले, पट्टदकल्लु, बादामी आदि प्रेक्षणीय स्थान हैं। बादामी में गुहांतर्देवालाय हैं।

चिक्कमगळूर

चिक्कमगळूर जिल्ले में श्री शंकराचार्य के मुख्य पीठों में से एक श्रृंगेरी में है। यह तुंगा नदी के किनारे बसा हुआ है। नदी के पक्के घाट पर ही श्री शंकराचार्य का मठ है। मठ के आहाते में श्री शारदा देवी का और विद्यातीर्थ–महेश्वर का मंदिर है। कहते हैं कि आदिशंकराचार्य ने इनकी स्थापना की थी। भगवती शारदा देवी की मूर्ति भव्य मन मोहक, एवं आकर्षक है। मठ में श्री चन्द्रमौलेश्वर का पूजन भी होता है। नजदीक की पहाडी पर भव्य विभांडकेश्वर शिव का मंदिर है। श्रृंगेरी से नौ मील दूरी पर श्रृंगगिरि पर्वत है। इसी को ऋष्यश्रृंग ऋषि का जन्मस्थान मानते हैं। इस पर्वत का प्राचीन नाम वाराह पर्वत है। इसी पर्वत पर विभिन्न स्थानों

में तुंग, भद्रा, नेत्रावती, वाराही–इन चार नदियों के उगम स्थान हैं। इन चार नदीयों से कर्नाटक की उपज बढ़ी हैं।

बल्लारी

बल्लारी जिल्ले कर्नाटक और आन्ध्र की सीमा पर स्थित है। होसपेट बल्लारी का तालुका स्थान है। यहाँ से कुछ ही दूर पर तुंगभद्रा नदी का बाँध हैं। इस बाँध के बनने के बाद बल्लारी जिल्ला जो पहले सूखा हुआ और अत्यन्त पिछड़ा हुआ जिल्ला कहलाता था, आज सस्यश्यामला मनोहर खलिहानों से समृद्ध है। कई मीलों तक पानी ने बहकर हजारों एकड़ो की भूमि को उपजाऊ बनाया है। तुंगभद्र बाँध देखने के लिए बहुत सुन्दर एवं रमाणीय है।

होसपेट से पाँच–छः मील दूरी पर हंपी क्षेत्र स्थित है। यहीं प्राचीन विजय नगर की राजधानी रहा। यहाँ देखने लायक निम्नांकित स्थान हैं :

विरूपाक्ष मंदिर

यह भव्य मंदिर सोने के कलश से जगमगाता है। मंदिर के सामनेवाले आंगन में सुन्दर सभा मंटप है। वहाँ शिवलिंग की मूर्ति है। इसके उत्तरवाले मंटप में 'भुवनेश्वरी' की मूर्ति है और इसके पश्चिम में पार्वती की मूर्ति है। इसके समीप श्रीगणेश मूर्ति तथा नवग्रह हैं। मंदिर के पिछले भाग के एक आँगन में स्वामी विद्यारण्य (श्री माध्वचार्य जी) की समाधि है। यहाँ उनकी मूर्ति भी है। ये विजयनगर के संस्थापक महर्षि हैं।

मंदिर के उत्तर भाग में हेमकूटट नामक पहाडी पर कई देव–मंदिर हैं। इस पहाड़ में कई गुफाएँ हैं। कहा जाता है की हनुमान आदि वानरों ने श्री रामजी के लिए इसे ही विश्राम स्थान बना दिया था और इस स्थान को किष्किंधा नगर भी कहा जाता है। इस पर्ववत में स्फटिकशिला को काटकर एक सुन्दर गुफा बनाई गई है जिसमें राममंदिर है। वहाँ सप्रर्षियों की मूर्तियाँ भी हैं।

ऋष्यमूक पर्वत

इस पर्वत के पार्श्व में तुंगभद्रा चक्राकार बनकर बहती है जिसे चक्रतीर्थ कहते हैं। मातुंग नामग पर्वत उसी का एक भाग है। इसके शिखर पर एक मंदिर हैं। कहा जाता है कि इसी शिखर पर मातुंगऋषि का आश्रम था।

हंपीक्षेत्र का सबसे विशाल एवं कलापूर्ण मंदिर विट्ठल स्वामी का है। इसमें कोई मूर्ति नहीं। इसके कल्याण मंटप की कला अद्भुत है। यहाँ की शिलामूर्तियाँ सजीव सी दिखाई देती हैं। आंगन में एक पत्थर का बनाया सुन्दर राजरथ खड़ा है। इस रथ का खुदाई का काम महान है। उस मंटप में एक कंबा है। उस कंबे को काटकर सात कंबे खड़े कर दिए गये हैं। जिनमें से सप्तस्वर निकलते हैं। विरूपाक्ष मंदिर के लगभग तीन मील दक्षिण पूर्व विजयनगर नरेश के राजभवन के खंडहर दिखाई देते हैं। यहाँ के भवन, स्नानागार, महल आदि देखने लायक हैं। इस भवन से कुछ दूर पर हजार–राम–मंदिर है। यह भी विग्रह रहित स्थान है। दीवारों पर संपूर्ण रामलीला पत्थरों में खुदी हुई हीं। विष्णु की अन्य अवतार की मूर्तियाँ भी यहाँ के पत्थरों पर खुदी हुई हैं। लक्ष्मी नरसिंह विग्रह, सासुवे गणपति, कडलेकाळुगणपति आदि मूर्तियाँ हैं।

सन्यासी का टीला एक प्रसिद्ध स्थान है। कहते है कि महामुनि विद्यारण्यजी ने तपस्या कर विजयनगर की स्थापना के लिए माताभुवनेश्वरी को प्रसन्न कर लिया था। कन्नडिगों की कुलदेवी भुवनेश्वरी देवी है। उसी की कृपा से वहाँ के शमीवृक्ष पर स्वर्ण बृष्टि हुई थी जिसके स्मरण में नवरात्रि पर्वकाल में शमी के पत्तों को स्वर्ण रूप में कन्नड़ भाषा–भाषी लोग आपस में बांटकर परस्पर प्रेम–स्नेह–सौहार्द जाग्रत करते हैं। पंपा क्षेत्र चौबीस मील के विस्तृत प्रदेश में स्थित है। यह क्षेत्र प्राचीन गौरव गाथा को लिए सुनसान पड़ा है।

जिलावर दर्शनीय स्थान

मैसूर : कृष्णराज सागर, चामुंडी पहाड, जगन्मोहन प्यालेस, बृंदावन गार्डन, महाराज प्यालेस, जू गार्डन, (प्राणियों का एकत्रित स्थान) नंजनगूड, बिलिगिरि रंगनबेट्ट, मलैमादेश्वर, बंडीपुर.

मंड्या : श्रीरंग पट्टनं, त्रिवेणी संगम, पहाड, पक्षिधाम, मेकेदाटु, आदिचुंचनगिरी, सोमनाथ मंदिर मठ, शक्कर का कारखाना, कागड का कारखाना.

कूर्ग : (कोडगु) तलकावेरी, श्रीमंगलम, बाराहोळे, नागर होळे मडकेरी की सुन्दर पर्वत–श्रेणी के दृश्य, इसे कर्नाटक का काश्मीर भी कहकर पुकारते हैं। काफ़ी एस्टेट और नारंगी के लिए प्रसिद्ध है।

हासन : हळेबीडु, बेलूर, श्रवणबेळगोळ, हासनांबा मंदिर।

चिक्कमगळूर : श्रृंगेरी मठ, बाबाबुडन गिरि, गविगंगाधर स्वामी देवालय, बसवण्ण देवालय ।

बेंगलोर : विधान सौधा हेच. एम. टी, ऐ.टी.ऐ, केरपेगोड़ा अंतराष्ट्रीय विमान निल्दाण, इस्कान मंदिर, इसके अलावा ऐ. टी, I.T Company उदा–'इन्फोसिस' विप्रो एच. पी. कनर्णिस और 'डेल' आदि बड़े–बड़े–साफ्टवेयर कंपनियाँ है। आज कल बेंगलूर 'माल' के लिए प्रसिद्ध है। ओरियन, मंत्रीमाल, वी स्टार बजार, बिगबजार आदि है। ऐरक्राफ्ट, टीपू प्यालेस, कई देवालय, लालबाग, कब्बनपार्क, म्यूजियम, बन्नेरूघट्टा (जीवंत प्राणि संग्रहालय) National Park बन्नेरगट्ट, रामोहल्ली वटवृक्ष, बच्चों के खिलोने बनाने के कारखाने चन्नपट्टण, रेशाम की फ्याक्टरी, 'रामनागर फिल्म सिटि' 'वन्डरला' आदि प्रसिद्ध है।

कोलार : सोने की खान, भार अर्थमुवर्स, चिक्क बल्लापुर के पास विश्वेश्वरय्या का जन्म स्थान मुद्देनहळ्ळी, गौरीबिदनुर के पास विदुराश्वत्थ, दोड्डबल्लापुर के पास घाटी सुब्रह्मण्य मंदिर, मुळबागिल के पास मध्वसंप्रदाय मठ, हनुमान मंदिर और नंदी पहाड़।

तुमकूर : सिद्दगंगा मठ, चेलूर गणपति देवालय, कुणिगल के पास एडियूर सिद्धलिंगेश्वर देवालय, देवरायन–दुर्ग, कैदाल, गुब्बी।

चित्रदुर्ग : चित्रदुर्ग किला, ओबब्वा का स्थान, सिरिगेरेमठ, मुरघराजेन्द्र स्वामी मठ, कर्नाटक के प्रसिद्ध नेता श्री एस. निजलिंगप्पा का घर, दावणगेरे काटन मिल्स, हरिहर का मन्दिर, किर्लोस्कर ऐरन फ्याक्टरी।

शिवमोग्गा : जोग़–जलपात, भद्रवती लोहे का कारखाना, स्त्रीगंद फ्याक्टरी, सोरबा सागर । प्रसिद्ध श्रृंगेरी मठ और शारदादेवी का मंदिर सागरा के पास सिगंदूर चौडेश्वरी मंदिर अत्यंत प्रसिद्ध है। सिरसी जिल्ला में 'सिरसी मारिकांबा' का मंदिर है–बहुत पुरानी तथा ख्यात मंदिर है। वहाँ की जात्रा में कम से कम एक लाख लोग भाग लेते है।

दक्षिणकन्नड मंगलूर जिल्ले : उडुपि, मंगलूर बंदरगाह, धर्मस्थल, मूकांबिका मंदिर, सुब्रह्मण्य मंदिर, कटील दुर्गपरमेश्वरी मंदिर, कार्कळ में जैन देवालय और वेणूर।

कारवार : मत्स्य संग्रहालय, समुद्र किनारा, बन्दरगाह गोकर्णक्षेत्र, ईडगुंजि गणपति, मुरडेश्वर, दाँडेली पेपरमिल्स ।

धारवाड : कर्नाटक विश्वविद्यालय, गदग में वीरानारायण देवालय, अण्णिगेरी, उणकल, हुब्बल्ली में श्री सिद्धारूढ़ मठ, श्री मूरुसाविर मठ, हानगल–तारकेश्वर देवालय, लक्ष्मेश्वर के सोमेस्वर देवालय, हावेही–सिद्देश्वर देवालय।

बेळगाँव : सौदत्ती–यल्लम्मा देवालय, कित्तूर राणी चेन्नम्मा का स्मारक केन्द्र–किला, गोकाक, घटप्रभा, अथणी में शिवयोगीश्वर मंदिर, घटप्रभा–मलप्रभा–बाँध।

बीदर : कूडल संगम, बसव कल्याण, बीदर शहर में स्थित सिखों का धर्मस्थान, हुमानबाद में वीरभद्र देवालय, भाल्की में उराने किले।

रायचूर : इटगी किला, महादेव देवालय, शक्तिनगर राघवेन्द्रस्वामी देवालय–40 किलो दूर पर मंत्रालय, चावल के कारखाने–गंगावती कोप्पल के गविसिद्धेश्वर मठ।

गुलबर्गा : शरण बसवेश्वर देवालय, बंदेनवाज की दरगाह, बहमनी किला, गुलबर्गा विश्वविद्यालय।

बिजापुर : गोलगुंबज, सालोटगी, शिवयोगीश्वर देवालय, मेणबसदी देवालय, कूडल संगम, ऐहोले, पट्टदकल्लु, बादामी, बागलकोटे सीमेंट फ्याक्टरी।

बल्लारी : तुंगभद्रड्याम, हंपी–विरूपाक्ष देवालय, सौडूंर–लोहे के पहाड, कार्तिक स्वामि देवालय, मेडिकल कॉलेज, पुराने किले। (अब जो नये जिल्ले बने हैं। वै इन्ही के अंतर्गत आते है।)

कुदुरेमुख परियोजना

कर्नाटक राज्य में एक अरोली गंग–मूला पर्वतमाला है, जिसकी उच्चतम चोटी की आकृति अश्व मुख जैसी है और घोड़े के मुह को कन्नड में कुदुरेमुख कहते हैं। इसीलिए इस परियोजना को कुदुरेमुख परियोजना की संज्ञा दी गयी है। इस परियोजना के मूल उद्गाम का इतिहास बहुत पुराना है। तत्कालीन मैसूर राज्य में एक भूविज्ञानी थे, जिनका नाम श्री संपत अय्यंगार था। श्री अय्यंगार ने ही सन् 1913 में सर्वप्रथम इस पर्वत माला में लोह–कणों की खोज की थी। उनकी इस खोज ने आगे चल कर देश की इस विशालतम खनन परियोजना का सूत्रपात किया।

भारत और ईरान सरकार के संयुक्त प्रयास के फली भूत इस परियोजना की शर्तें भी अपने आप में बड़ी रोचक हैं। ईरान सरकार के साथ दो करार हुए हैं, जिनके अनुसार ईरान सरकार भारत सरकार को कच्चा लोह निकाल कर कॉंसंट्रेट बनाने के लिए 63 करोड़ अमेरिकी डालर ऋण देगी और बदले में कुदुरेमुख परियोजना से 15 करोड टन कँसंट्रेट खरीदेगी। इस करार के अनुसार भारत 20 वर्ष की अवधि तक ईरान को लोह–अयस्क कॉंसंट्रेट निर्यात करेगा, जिसकी शुरुआत सितंबर 1980 से होगी। अब जरा उस शर्त का जायजा लें, जो इस परियोजना को एक विशिष्ट दर्जा प्रदान करती है तथा जिसके परिणाम स्वरूप इस परियोजना का संपूर्णकार्य समयबद्ध रूप से चलाना अनिवार्य हो गया है तथा निर्माण व परिचालन के हर क्षेत्र में युद्ध–स्तर पर काम किया जा रहा है, तो इसकी मुख्य शर्त यह है कि जो भी पक्ष अपनी जिम्मेदारी पूरी नहीं करेगा, उसे भारी मुआबजा देना होगा। यदि लोह–अयस्क कॉंसंट्रेट उठाने में विलंब ईरान सरकार की ओर से हुआ, तो उसे भुगताना पड़ेगा और यदि कॉंसंट्रेट की पूर्ति करने में देर हमारी ओर से होती है, तो उसका उत्तरदायित्व

हमारा होगा। इन शर्तों के अनुसार लोह–अयस्क काँसंट्रेट की पहली खेप सितंबर, 1980 में ईरान को भेजी जायेगी।

आधुनिक औद्योगिक तथा उपकरणों का प्रयोग–कुदुरेमुख पर्वत श्रृंखला में छिपि लोह–अयस्क के विशाल भंडार में निम्न ग्रेड का लोह–अयस्क पाया जाता है, जिसका खनन तथा परिष्करण में लोह–अयस्क के खनन के लिए ऐसी औद्योगिक का इस्तेमाल किया जा रहा है, जो देश के लिए नयी होने के साथ–साथ अपने आप में अनोखी भी है। खुली खानों से लोह–अयस्क के खनन के लिए जो उपकरण इस्तेमाल किये जा रहे हैं, वे आमतौर पर उपयोग में लाये जाने उपकरणों से तीन–चार गुन बड़े हैं। इनमें 120 टन की क्षमता वाले वैबको ट्रक 12-4 घन गज्र के खनन–बेलचे, 12 घन गज्र के फ्रंट एंड लोडर आदि प्रमुख हैं।

खनन तथा निर्माण प्रक्रिया–इस परियोजना की निर्माण–प्रक्रिया भी अत्यंत विशिष्ट है । सर्व–प्रथम करोड़ टन अयस्क क्षेत्र की खुदाई की जायेगी । फिर लोग–अयस्क के टुकड़ों का एक संयंत्र में डाल कर तोड़ा जायेगा । इसके बाद लगभग साढ़े तीन मील लंबे कन्वेयर मार्ग द्वारा इन छोटे–छोटे टुकड़ों को एक ऐसे बड़े संयंत्र तक ले जाया जायेगा, जिसे काँसंट्रेटर प्लीट कहते हैं। यहाँ कठोर अयस्क व मुलायम अयस्क के बड़े–बड़े टुकड़ों को लगातार घूमनेवाले विशाल ड्रमों में डाला जाएगा और उन्हें और छोटे–छोटे टुकड़ों में विभाजित किया जायेगा। ये ड्रम आटोजेनस मिलें हैं, जिनका इस्तेमाल देश के खनन उद्योग् में पहली बार हो रहा हैं। इसके बाद उन्हें पहले मैगनेटिक सेपेरेटर नामक यंत्र द्वारा और फिर ग्रेविटी स्पाइरल नामक यंत्र द्वारा तब तक सांद्रीकृत किया जायेगा, जब तक कि उनमें से 67 प्रतिशत लोह तत्व न निकल आये। फिर जो 67 प्रतिशत लोह–अयस्क काँसंट्रेट रूप में तैयार होगा, उसमें पानी मिला कर उसे घोल स्लरी में बदल दिया जायेगा। फिर इस घोल को 67 किलोमीटर लंबी पाइप लाइन द्वारा पंप करके मंगलोर बंदरगाह तक ले जाया जायेगा, जहाँ से घोल में से पानी निकाल कर उनके केक बनाये जायेंगे, जिन्हें विशाल जहाजों द्वारा ईरान भेज दिया जायेगा।

कुदुरेमुख नगर–पहाड़ों की गोद में स्थापित इस परियोजना का अब तो, अपना एक पूरा नगर बन कर तैयार हो गया है। सभी कर्मचारियों के लिए सुंदर, आरामदेह मकान बनाने के अतिरिक्त अस्पताल, पक्की सड़कें, दुकानें, मनोरंजन के लिए क्लब तथा सामुदायिक केन्द्र भी बनाये गये हैं। परियोजना के कर्मचारियों के लिए 50 शय्या वाला एक आधुनिक अस्पताल भी बनाया गया है।

परियोजना के कर्मचारियों के लिए जहाँ अन्य सभी सुविधाएँ जुटाई गयी हैं। वहाँ उनके बच्चों के लिए भी समुचित शिक्षा की व्यवस्था भी की गयी है। यहाँ केन्द्रीय विद्यालय के अतिरिक्त दो विद्यालय और भी चल रहे हैं। नन्हें–मुन्हें बच्चों के लिए बाल भवन में एक नर्सरी स्कूल भी खोला गया है।

भारतमाता की पुत्री कर्नाटक माता सर्वांग सुंदरी है। यहाँ की प्रकृति के मनोहरी सौंदर्य अनुपम और अद्वितीय है। यहाँ के निवासी शूर–वीर, पंडित ज्ञानी, सहृदयी और सौंदर्योपासक हैं। अतः प्रकृतिदात्त सौंदर्य के साथ मानव की कला पूर्ण क्षमता के योग से संपूर्ण कन्नड़ प्रदेश चित्ताकर्षित करता है। यहाँ की शिल्पकला, मूर्तिकला तथा वैभव संपन्न नगरों को देखकर यात्री न केवल आनंदित ही होते हैं, आश्चर्य चकित भी हो जाते हैं। यहाँ के पुण्य क्षेत्र भक्ति–भावनाओं को प्रेरित करते हैं। इस प्रदेश में क्या नहीं है, सभी कुछ है। प्रकृति प्रेमियों के लिए प्राकृतिक संपदा है, भक्तों के लिए मंदिरों व धार्मिक स्थान विद्यामान हैं, सरस्वती के उपासकों के लिए ज्ञान भंडार ही है। अन्वेषकों के लिए विभिन्न सामग्रियाँ हैं। कला, ज्ञान–विज्ञान तथा औद्योगिक क्षेत्र में भी कर्नाटक बेजोड़ है। बड़े-बड़े अस्पताल जो देश-विदेशों में ख्याति है। ऑपरेशन के लिए विदेश से भी कर्नाटक आते है। धन्य है कर्नाटक माता..........धन्य है.........!

*****